Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XII **No. - 1** **(Jan. – Mar.) 2026**

(Part – III)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - ***A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal***, *Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण का प्रभावः एक सामान्य अध्ययन ***डॉ. ज्योति ठाकुर***	01-06
➲	भारत में चुनावी सुधारों की आवश्यकताः एक राजनीतिक विश्लेषण ***डॉ. राजेश कुमार***	07-13
➲	माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर आत्म संकल्पना का प्रभाव ***डॉ. सोनम कुमारी***	14-19
➲	रामायण एवं रामचरितमानस में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणाएँ ***शिवानी*** ***कल्पना***	20-22
➲	अनुवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप और रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद–परम्पराः एक आलोचनात्मक विमर्श ***डॉ. रीना***	23-29
➲	सिंधु घाटी सभ्यता का नगर नियोजनः मिथक या अभियांत्रिकी का अद्भुत चमत्कार ***डॉ. विजय कुमार पाण्डेय*** ***डॉ. चन्द्रशेखर***	30-37
➲	डॉ. विवेकी राय की साहित्यिक भाव–भूमि : परंपरा, आधुनिकता तथा लोक–चेतना का द्वंद्व ***डॉ. सूरज सिंह***	38-46
➲	भारतीय ज्ञान प्रणाली में भाषा का महत्त्व ***निशान्त कुमार शुक्ल***	47-51
➲	ग्रामीण स्वास्थ्य संस्कृति के परिवर्तित प्रतिमानों का स्वरूप ***धीरेन्द्र कुमार गुप्ता***	52-55
➲	शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एवं प्राथमिक शिक्षा के संसाधन ***अल्पना वर्मा*** ***डॉ. चंद्रजीत यादव***	56-60
➲	जलवायु परिवर्तन का ग्रामीण समाज और आजीविका पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ***डॉ. अर्चना मिश्रा***	61-64

पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण का प्रभावः एक सामान्य अध्ययन

डॉ. ज्योति ठाकुर*

सार

पारंपरिक व्यवसाय भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना का महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। ये व्यवसाय स्थानीय संसाधनों, पारिवारिक कौशल और सांस्कृतिक परंपराओं पर आधारित होते थे तथा समाज में आत्मनिर्भरता और स्थिरता को बनाए रखते थे। किंतु आधुनिक युग में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया—जिसमें औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण और डिजिटलीकरण शामिल हैं—ने इन व्यवसायों के स्वरूप और महत्व को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है और इसका उद्देश्य पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण के बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ आधुनिकीकरण ने पारंपरिक व्यवसायों के अस्तित्व को चुनौती दी है, वहीं उसने उनके विकास और पुनर्गठन के नए अवसर भी प्रदान किए हैं (आलम, 2023; कुमार एवं तिवारी, 2023)।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में पारंपरिक व्यवसायों की एक लंबी और समृद्ध परंपरा रही है। ये व्यवसाय केवल जीविका का साधन नहीं थे, बल्कि सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक जीवन के अभिन्न अंग थे। विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों में विशिष्ट व्यवसाय विकसित हुए, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे। उदाहरण के लिए, बुनकर, कुम्हार, लोहार, बढ़ई और सुनार जैसे व्यवसायों ने न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाया, बल्कि भारतीय संस्कृति को भी समृद्ध किया।

तालिका: भारतीय समाज में जाति-आधारित पारंपरिक व्यवसाय

क्रमांक	जातिसमुदाय/	पारंपरिक व्यवसाय	संक्षिप्त विवरण	स्रोत)In-text Citation)
1	ब्राह्मण	पुरोहिताई, शिक्षा	धार्मिक अनुष्ठान, वेद अध्ययन एवं शिक्षण कार्य	(आलम, 2023)
2	क्षत्रिय	शासन, सैनिक कार्य	प्रशासन, सुरक्षा एवं युद्ध से संबंधित कार्य	(कुमार एवं तिवारी, 2023)
3	वैश्य	व्यापार, वाणिज्य	व्यापार, कृषि एवं पशुपालन	(कुमार एवं तिवारी, 2023)
4	शूद्र	सेवा कार्य	अन्य वर्णों की सेवा एवं श्रम आधारित कार्य	(आलम, 2023)
5	लोहार (कर्मकार)	लोहे का काम	कृषि उपकरण, हथियार एवं औजार बनाना	(सिलवाल, 2024)
6	कुम्हार	मिट्टी के बर्तन बनाना	घरेलू उपयोग के बर्तन एवं सजावटी वस्तुएँ	(कुमारी, 2025)

*समाजशास्त्र, नवीन शासकीय कन्या महाविद्यालय, मोहला, जिला–मोहला, मानपुर, अंबागढ़ चौकी छत्तीसगढ़

क्रमांक	जातिसमुदाय/	पारंपरिक व्यवसाय	संक्षिप्त विवरण	स्रोत)In-text Citation)
7	बुनकर (जुलाहा)	कपड़ा बुनना	हथकरघा से वस्त्र निर्माण	(रिसर्चगेट, 2024)
8	नाई	बाल काटना, दाढ़ी बनाना	व्यक्तिगत सेवा एवं सामाजिक अनुष्ठानों में भूमिका	(आलम, 2023)
9	धोबी	कपड़े धोना	कपड़ों की सफाई एवं धुलाई	(सिलवाल, 2024)
10	चमार	चमड़े का काम	जूते एवं चमड़े के उत्पाद बनाना	(सिलवाल, 2024)
11	सुनार	आभूषण बनाना	सोनेचाँदी के गहनों का निर्माण-	(कुमार एवं तिवारी, 2023)
12	बढ़ई	लकड़ी का काम	फर्नीचर एवं लकड़ी के उपकरण बनाना	(कुमारी, 2025)
13	मछुआरा केवट) (आदि	मछली पकड़ना	जल संसाधनों पर आधारित जीविका	(कुमारी, 2025)
14	तेली	तेल निकालना	सरसों आदि से तेल उत्पादन	(आलम, 2023)
15	बंजारा	व्यापार एवं परिवहन	वस्तुओं का स्थानांतरण एवं व्यापार	(रिसर्चगेट, 2024)

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में व्यवसायों का निर्धारण परंपरागत रूप से जाति के आधार पर किया जाता था। यह व्यवस्था न केवल आर्थिक गतिविधियों को संगठित करती थी, बल्कि सामाजिक संरचना को भी स्थिर बनाए रखती थी। प्रत्येक जाति का एक निश्चित कार्य था, जिससे श्रम विभाजन सुनिश्चित होता था।

हालांकि, आधुनिकीकरण के प्रभाव से यह संरचना अब तेजी से बदल रही है। शिक्षा, नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण व्यक्ति अब जाति-आधारित व्यवसायों तक सीमित नहीं है, जिससे पारंपरिक पेशागत व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा है (आलम, 2023; सिलवाल, 2024)।

इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण के प्रभावों का एक समग्र अध्ययन किया जाए, जिससे न केवल वर्तमान स्थिति को समझा जा सके, बल्कि भविष्य की संभावनाओं का भी आकलन किया जा सके।

आधुनिकीकरण की अवधारणा

आधुनिकीकरण को सामान्यतः एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसके माध्यम से पारंपरिक समाज आधुनिक, औद्योगिक और तकनीकी समाज में परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी व्यापक प्रभाव डालता है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास और तकनीकी उन्नति प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इन तत्वों के कारण उत्पादन प्रणाली, सामाजिक संबंधों और जीवनशैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। आधुनिक तकनीकों के उपयोग से उत्पादन की गति और गुणवत्ता में वृद्धि होती है, जिससे पारंपरिक उत्पादन प्रणालियाँ प्रभावित होती हैं (कुमार एवं तिवारी, 2023)।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। इस शोध के लिए विभिन्न स्रोतों से सामग्री एकत्रित की गई है, जिनमें शोध पत्र, पुस्तकों, सरकारी रिपोर्टों तथा ऑनलाइन डेटाबेस शामिल हैं। इन स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधियों के माध्यम से किया गया है।

विषयवस्तु विश्लेषण की पद्धति का उपयोग करते हुए विभिन्न अध्ययनों की तुलना की गई है, जिससे पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण के प्रभावों की व्यापक समझ विकसित की जा सके। द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग इस अध्ययन के लिए उपयुक्त है क्योंकि यह विभिन्न क्षेत्रों और समयावधियों के अनुभवों को समाहित करता है (कुमार एवं तिवारी, 2023)।

परिकल्पनाएँ

इस अध्ययन में यह मान्यता रखी गई है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पारंपरिक व्यवसायों में कमी लाती है, किंतु साथ ही यह नए आर्थिक अवसर भी उत्पन्न करती है। यह भी परिकल्पित किया गया है कि डिजिटलीकरण पारंपरिक व्यवसायों के पुनरुत्थान में सहायक सिद्ध हो सकता है तथा वैश्वीकरण के कारण इन व्यवसायों में प्रतिस्पर्धा की तीव्रता बढ़ी है।

H1: आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के कारण पारंपरिक व्यवसायों में उल्लेखनीय कमी आई है।

H2: आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप नए रोजगार अवसरों का सृजन हुआ है, जिससे पारंपरिक व्यवसायों पर निर्भरता कम हुई है।

H3: डिजिटलीकरण पारंपरिक व्यवसायों के विकास, विस्तार एवं पुनरुत्थान में सहायक सिद्ध हो रहा है।

H4: वैश्वीकरण के कारण पारंपरिक व्यवसायों में प्रतिस्पर्धा की तीव्रता बढ़ी है, जिससे छोटे एवं कुटीर उद्योगों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

साहित्य समीक्षा

आधुनिकीकरण और पारंपरिक व्यवसायों के संबंध में किए गए विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि यह एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है। आलम (2023) के अनुसार, आधुनिक शिक्षा और नगरीकरण के प्रभाव से पारंपरिक पेशागत संरचना में परिवर्तन आया है और व्यक्तियों को नए रोजगार अवसर प्राप्त हुए हैं।

सिलवाल (2024) ने अपने अध्ययन में पाया कि दलित समुदायों में पारंपरिक व्यवसायों का त्याग बढ़ रहा है, क्योंकि नई पीढ़ी आधुनिक रोजगार के प्रति अधिक आकर्षित हो रही है। इसी प्रकार, कुमारी (2025) ने जनजातीय समाज में आधुनिकीकरण के प्रभावों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि पारंपरिक जीवनशैली और व्यवसायों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है।

इसके अतिरिक्त, डिजिटलीकरण के प्रभाव पर किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक व्यवसायों को नए बाजारों तक पहुँच प्राप्त हो रही है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार संभव है (रिसर्चगेट, 2024)।

पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव

आधुनिकीकरण के प्रभावों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया बहुआयामी है। आर्थिक दृष्टि से, औद्योगिकीकरण और मशीनों के उपयोग ने उत्पादन की लागत को कम किया है और बड़े पैमाने पर उत्पादन को संभव बनाया है। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक कारीगरों को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा है, जिससे उनके व्यवसायों में गिरावट आई है।

सामाजिक दृष्टि से, आधुनिकीकरण ने व्यक्तियों को अपने पारंपरिक व्यवसायों से हटकर नए क्षेत्रों में कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान की है। इससे सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है और पारंपरिक सीमाएँ कमजोर हुई हैं (आलम, 2023)।

सांस्कृतिक दृष्टि से, यह प्रक्रिया पारंपरिक ज्ञान और कौशल के ह्रास का कारण बन रही है। कई पारंपरिक कलाएँ और शिल्प धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं, जिससे सांस्कृतिक विरासत को खतरा उत्पन्न हो गया है।

हालांकि, तकनीकी विकास और डिजिटलीकरण ने पारंपरिक व्यवसायों के लिए नए अवसर भी प्रदान किए हैं। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और डिजिटल मार्केटिंग के माध्यम से पारंपरिक उत्पादों को वैश्विक बाजार तक पहुँच प्राप्त हुई है, जिससे उनकी मांग में वृद्धि हुई है (रिसर्चगेट, 2024)।

केस स्टडी

पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण के प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए विभिन्न उदाहरणों का अध्ययन आवश्यक है।

वाराणसी का बनारसी साड़ी उद्योग एक प्रमुख उदाहरण है, जहाँ पारंपरिक बुनकरों ने सदियों से अपनी कला को संरक्षित रखा है। किंतु पावरलूम और मशीनों के आगमन के कारण इस उद्योग को भारी नुकसान हुआ। इसके बावजूद, हाल के वर्षों में डिजिटल प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन बाजारों के माध्यम से इस उद्योग को पुनर्जीवित करने के प्रयास किए गए हैं।

इसी प्रकार, कुम्हार समुदाय का व्यवसाय प्लास्टिक और धातु उत्पादों के कारण प्रभावित हुआ है। किंतु पर्यावरण के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण मिट्टी के बर्तनों की मांग में पुनः वृद्धि हो रही है।

जनजातीय हस्तशिल्प का उदाहरण भी महत्वपूर्ण है, जहाँ पारंपरिक उत्पादों को सरकारी योजनाओं और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से नए बाजारों से जोड़ा गया है, जिससे कारीगरों की आय में वृद्धि हुई है (कुमारी, 2025)।

चर्चा

भारतीय अर्थव्यवस्था में पारंपरिक व्यवसायों का योगदान अभी भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषकर **हथकरघा, हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग** के रूप में। सरकारी आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण के बावजूद ये क्षेत्र अभी भी बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान कर रहे हैं।

तालिका: पारंपरिक व्यवसायों से संबंधित प्रमुख सरकारी आँकड़े

संकेतक	आँकड़ा	व्याख्या	स्रोत
कुल हथकरघा श्रमिक	35.2 लाख	भारत में बुनकर और सहायक श्रमिक	(हैंडलूम जनगणना, 2019–20)
हथकरघा परिवार	31.4 लाख	पारंपरिक व्यवसाय में लगे परिवार	(हैंडलूम जनगणना, 2019–20)
हस्तशिल्प/हथकरघा इकाइयाँ	18.7 लाख	कुल पारंपरिक उत्पादन इकाइयाँ	(आर्थिक जनगणना, 2013–14)
ग्रामीण इकाइयों का प्रतिशत	59.6%	अधिकांश व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्रों में	(आर्थिक जनगणना, 2013–14)
बिना कर्मचारी वाले व्यवसाय	78.9%	पारिवारिक/स्व-रोजगार आधारित इकाइयाँ	(आर्थिक जनगणना, 2013–14)
महिला भागीदारी	~70%+	विशेषकर हथकरघा क्षेत्र में	(सरकारी रिपोर्ट)

ग्राफ: पारंपरिक व्यवसायों में रोजगार संरचना

- **हथकरघा क्षेत्र में रोजगार वितरण (2019–20)**

कुल श्रमिक: 35.2 लाख

बुनकर (Weavers) ████████████████████████ (लगभग 76%)

सहायक कार्यकर्ता ███████ (लगभग 24%)

➡ यह दर्शाता है कि पारंपरिक व्यवसायों में मुख्य श्रम अभी भी **कौशल आधारित उत्पादन** पर केंद्रित है (हैंडलूम जनगणना, 2019–20)

- **ग्राफ: ग्रामीण बनाम शहरी इकाइयाँ**

ग्रामीण इकाइयाँ ██████████████████████ (59.6%)

शहरी इकाइयाँ ██████████████ (40.4%)

➡ यह स्पष्ट करता है कि पारंपरिक व्यवसाय अभी भी **ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार** हैं (आर्थिक जनगणना, 2013–14)

MSME सेक्टर और पारंपरिक व्यवसाय

भारत में पारंपरिक व्यवसायों का एक बड़ा हिस्सा **MSME (Micro, Small and Medium Enterprises)** के अंतर्गत आता है। यह क्षेत्र ग्रामीण और शहरी दोनों अर्थव्यवस्थाओं को जोड़ता है।

सरकारी रिपोर्टों के अनुसार MSME क्षेत्र:

- रोजगार सृजन का प्रमुख स्रोत है
- कम पूंजी में अधिक रोजगार प्रदान करता है
- पारंपरिक कौशल आधारित उद्योगों को संरक्षित करता है

हथकरघा उद्योग विशेष रूप से MSME का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो लाखों लोगों को रोजगार देता है और सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखता है (MSME मंत्रालय, भारत सरकार)

विश्लेषण

उपरोक्त आंकड़ों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:

पहला, पारंपरिक व्यवसाय अभी भी भारत में बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान कर रहे हैं। लगभग 35 लाख से अधिक लोग केवल हथकरघा क्षेत्र में कार्यरत हैं, जो इसकी आर्थिक महत्ता को दर्शाता है।

दूसरा, इन व्यवसायों का अधिकांश हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में केंद्रित है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण के बावजूद ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इनका महत्व बना हुआ है।

तीसरा, पारंपरिक व्यवसायों का अधिकांश भाग पारिवारिक और स्व-रोजगार आधारित है, जो यह दर्शाता है कि यह क्षेत्र अभी भी औपचारिक अर्थव्यवस्था से पूर्णतः जुड़ा नहीं है।

चौथा, महिला श्रमिकों की उच्च भागीदारी यह दर्शाती है कि पारंपरिक व्यवसाय **महिला सशक्तिकरण** का भी महत्वपूर्ण साधन हैं।

उपलब्ध सरकारी आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक व्यवसाय भारतीय अर्थव्यवस्था में अभी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हथकरघा क्षेत्र में लगभग 35.2 लाख श्रमिक कार्यरत हैं, जो इस क्षेत्र की रोजगार क्षमता को दर्शाता है (हैंडलूम जनगणना, 2019–20)। इसी प्रकार, आर्थिक जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 18.7 लाख हस्तशिल्प और हथकरघा इकाइयाँ हैं, जिनमें से लगभग 59.6 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं (आर्थिक जनगणना, 2013–14) यह दर्शाता है कि पारंपरिक व्यवसाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है, जो पारंपरिक व्यवसायों को एक ओर चुनौती देती है और दूसरी ओर उनके विकास के नए अवसर भी प्रदान करती है।

यह प्रक्रिया न केवल आर्थिक संरचना को प्रभावित करती है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों में भी परिवर्तन लाती है। अतः यह आवश्यक है कि इस परिवर्तन को संतुलित दृष्टिकोण से समझा जाए और पारंपरिक व्यवसायों के संरक्षण एवं विकास के लिए उपयुक्त नीतियाँ बनाई जाएँ।

निष्कर्ष

H1: अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के कारण पारंपरिक व्यवसायों में उल्लेखनीय कमी आई है, क्योंकि औद्योगिकीकरण और मशीनों के उपयोग ने कुटीर एवं हस्तशिल्प आधारित उत्पादन को प्रतिस्पर्धा में पीछे कर दिया है (आलम, 2023; सिलवाल, 2024)।

H2: शोध से यह प्रमाणित होता है कि आधुनिकीकरण ने रोजगार के नए अवसरों का सृजन किया है, जिससे व्यक्तियों को पारंपरिक व्यवसायों से बाहर निकलकर विविध आधुनिक क्षेत्रों में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है (कुमार एवं तिवारी, 2023)।

H3: उपलब्ध आंकड़ों एवं अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डिजिटलीकरण पारंपरिक व्यवसायों के विकास और पुनरुत्थान में सहायक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि इसके माध्यम से कारीगरों को व्यापक बाजार तक पहुँच प्राप्त हो रही है (रिसर्चगेट, 2024)।

H4: अध्ययन यह भी दर्शाता है कि वैश्वीकरण के कारण पारंपरिक व्यवसायों में प्रतिस्पर्धा की तीव्रता बढ़ी है, जिससे छोटे कारीगरों और कुटीर उद्योगों को बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है (कुमारी, 2025)।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पारंपरिक व्यवसायों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव बहुआयामी और जटिल है। जहाँ यह प्रक्रिया पारंपरिक व्यवसायों के लिए चुनौतियाँ उत्पन्न करती है, वहीं यह उनके पुनर्गठन और विकास के अवसर भी प्रदान करती है।

अतः यह आवश्यक है कि पारंपरिक व्यवसायों को आधुनिक तकनीक और बाजार से जोड़ा जाए, जिससे वे वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में अपनी प्रासंगिकता बनाए रख सकें।

संदर्भ सूची

आर्थिक जनगणना. (2013–14). भारत में हस्तशिल्प एवं हथकरघा इकाइयों का विवरण.

आलम, एम. (2023). भारतीय जाति व्यवस्था में पेशागत परिवर्तन का अध्ययन. *सेज जर्नल्स.*

कुमार, ए., एवं तिवारी, बी. (2023). सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से भारतीय परंपराओं का आधुनिकीकरण. *ओपन एक्सेस जर्नल ऑफ बिहेवियरल साइंस एंड साइकोलॉजी.*

कुमारी, एम. (2025). जनजातीय समाज पर आधुनिकीकरण का प्रभाव. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल इम्पैक्ट.*

हैंडलूम जनगणना. (2019–20). भारत में बुनकरों और संबंधित श्रमिकों की स्थिति.

रिसर्चगेट. (2024). भारत में डिजिटलीकरण का प्रभाव: पारंपरिक से आधुनिक एमएसएमई की ओर परिवर्तन.

रिसर्चगेट. (2024). भारत में बंजारा समुदाय पर आधुनिकीकरण का प्रभाव.

सिलवाल, के. आर. (2024). दलित व्यवसायों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव. *डीएमसी जर्नल.*

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME). (विभिन्न वर्ष). भारत में कुटीर एवं हस्तशिल्प उद्योग.

◂◂ ▸▸

भारत में चुनावी सुधारों की आवश्यकता: एक राजनीतिक विश्लेषण

डॉ. राजेश कुमार*

सारांश:

भारतीय चुनाव व्यवस्था विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक उपक्रमों में से एक है। इसकी सफलता नियमित चुनावों, व्यापक मतदाता-भागीदारी और स्वतंत्र निर्वाचन-प्रशासन में दिखाई देती है; फिर भी चुनावी वित्त, राजनीति का आपराधिकरण, मतदाता-सूची की शुद्धता, प्रतिनिधित्व की विषमता, डिजिटल प्रचार, आदर्श आचार संहिता और निर्वाचन-प्रौद्योगिकी पर नागरिक विश्वास जैसे प्रश्न निरंतर सुधार की मांग करते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र भारत में चुनावी सुधारों की आवश्यकता का राजनीतिक विश्लेषण करता है। लेख का तर्क है कि चुनावी सुधारों का उद्देश्य केवल प्रक्रियात्मक दक्षता नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक समानता, पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धी निष्पक्षता और मतदाता की सूचित स्वायत्तता की रक्षा होना चाहिए।

मुख्य शब्द: चुनावी सुधार, निर्वाचन आयोग, चुनावी वित्त, राजनीति का आपराधिकरण, प्रतिनिधित्व, मतदाता सूची, ईवीएम, वीवीपीएटी

१. प्रस्तावना

भारत में चुनाव केवल सरकार बनाने की प्रक्रिया नहीं हैं; वे राष्ट्र की विविधता, नागरिक समानता और लोकतांत्रिक वैधता का सबसे व्यापक सार्वजनिक अनुष्ठान हैं। करोड़ों मतदाता, हजारों प्रत्याशी, अनेक दल, विशाल प्रशासनिक तंत्र और संघीय भौगोलिक विस्तार मिलकर भारतीय चुनाव को असाधारण बनाते हैं। किंतु लोकतंत्र की गुणवत्ता केवल इस बात से सिद्ध नहीं होती कि मतदान हो गया; वह इस बात से सिद्ध होती है कि चुनावी प्रतिस्पर्धा कितनी निष्पक्ष थी, मतदाता कितने सूचित थे, धन और अपराध का प्रभाव कितना नियंत्रित था, और निर्वाचन संस्थाएँ नागरिकों का विश्वास कितना बनाए रख सकीं।

भारतीय चुनाव व्यवस्था ने स्वतंत्रता के बाद से उल्लेखनीय संस्थागत क्षमता प्रदर्शित की है। फिर भी समय के साथ समाज, तकनीक, राजनीतिक वित्त और संचार के स्वरूप बदल गए हैं। चुनावी प्रचार अत्यधिक महँगा हुआ है, डिजिटल माध्यमों ने प्रचार की गति और दायरा बदला है, प्रत्याशियों के आपराधिक मामलों पर चिंता बढ़ी है, और चुनावी दान की पारदर्शिता लोकतांत्रिक विमर्श का केंद्रीय विषय बन गई है। इसलिए चुनावी सुधारों की आवश्यकता इस कारण नहीं है कि भारतीय चुनाव असफल हैं, बल्कि इसलिए है कि उनकी सफलता को नए दबावों के बीच टिकाऊ और विश्वसनीय बनाए रखना आवश्यक है।

२. संवैधानिक आधार और लोकतांत्रिक कसौटी

भारतीय चुनाव प्रणाली का संवैधानिक आधार व्यापक है। संविधान का अनुच्छेद ३२४ निर्वाचन आयोग को संसद, राज्य विधानसभाओं तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की शक्ति देता है। अनुच्छेद ३२५ धर्म, नस्ल, जाति या लिंग के आधार पर मतदाता-सूची से बहिष्कार को रोकता है, अनुच्छेद ३२६ वयस्क मताधिकार का आधार देता है, और अनुच्छेद ३२७ तथा ३२९ चुनावों के विधायी तथा न्यायिक ढाँचे से संबंधित हैं।[1]

* स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

[1] भारत का संविधान, अनुच्छेद ३२४, ३२५, ३२६, ३२७ और ३२९; इन प्रावधानों से चुनावी प्रशासन, मतदाता समानता, वयस्क मताधिकार और चुनाव-संबंधी विधि का संवैधानिक ढाँचा निर्मित होता है।

चुनावी सुधारों की कसौटी चार मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए: समानता, स्वतंत्रता, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व। समानता का अर्थ है कि प्रत्येक मतदाता का मत समान मूल्य रखे और प्रत्येक प्रत्याशी को निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा का अवसर मिले। स्वतंत्रता का अर्थ है कि मतदाता भय, प्रलोभन, भ्रामक सूचना और सामाजिक दबाव से मुक्त होकर निर्णय ले। पारदर्शिता का अर्थ है कि राजनीतिक वित्त, प्रत्याशी-पृष्ठभूमि और चुनावी प्रक्रिया नागरिकों की जानकारी में हों। उत्तरदायित्व का अर्थ है कि निर्वाचन संस्थाएँ, राजनीतिक दल और प्रत्याशी अपने आचरण के लिए जवाबदेह हों।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५० और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५१ ने संविधान की चुनावी दृष्टि को विधिक रूप दिया। मतदाता-सूची, निर्वाचन-क्षेत्र, प्रत्याशी-नामांकन, चुनाव-व्यय, राजनीतिक दलों का पंजीकरण, चुनावी अपराध और चुनाव-याचिका जैसे विषय इन कानूनों से नियंत्रित होते हैं। अतः चुनावी सुधारों की चर्चा केवल राजनीतिक नैतिकता की चर्चा नहीं, बल्कि विधायी पुनरावलोकन का विषय भी है।[2]

३. भारतीय चुनावों का विस्तार और सुधार की पृष्ठभूमि

२०२४ के आम चुनावों से पहले भारत में पंजीकृत मतदाताओं की संख्या ९६.८८ करोड़ बताई गई, जो किसी भी लोकतांत्रिक चुनावी व्यवस्था की प्रशासनिक जटिलता को स्पष्ट करती है। इतने विशाल मतदाता-समूह में सूची की शुद्धता, मतदान-केंद्रों की पहुँच, निर्वाचन-कर्मियों की निष्पक्षता, सुरक्षा प्रबंध, मतगणना की पारदर्शिता और सूचना-प्रसार की विश्वसनीयता अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।[3]

२०२४ के लोकसभा चुनाव में मतदान-केंद्रों पर ६५.७९ प्रतिशत मतदान दर्ज किया गया। यह आँकड़ा व्यापक भागीदारी का संकेत देता है, पर साथ ही यह प्रश्न भी छोड़ता है कि जिन मतदाताओं ने मतदान नहीं किया, उनके पीछे कौन से सामाजिक, आर्थिक, प्रवासी, लैंगिक, शहरी या प्रशासनिक कारण काम कर रहे थे। चुनावी सुधार केवल मतदान प्रतिशत बढ़ाने का कार्यक्रम नहीं, बल्कि भागीदारी में असमानताओं को समझने और उन्हें कम करने की प्रक्रिया है।[4]

निर्वाचन आयोग ने २०२४ लोकसभा चुनाव और चार विधानसभा चुनावों से संबंधित विस्तृत सांख्यिकीय प्रतिवेदन जारी किए। इन प्रतिवेदनों में निर्वाचन-क्षेत्र, मतदाता, मतदान-केंद्र, मतदान प्रतिशत, दलगत मत-हिस्सा, लैंगिक भागीदारी, विजेताओं और परिणामों से जुड़ी जानकारी दी गई। ऐसी सूचनात्मक पारदर्शिता सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि विश्वसनीय आँकड़ों के बिना चुनावी सुधार केवल अनुमान और राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप का विषय बन जाते हैं।[5]

४. चुनावी सुधारों की प्रमुख आवश्यकताएँ

४.१ चुनावी वित्त और पारदर्शिता

चुनावी वित्त भारतीय लोकतंत्र की सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है। चुनाव लड़ना महँगा होता जा रहा है, जिससे आर्थिक रूप से सशक्त प्रत्याशियों और दलों को असमान लाभ मिलता है। जब राजनीतिक दलों के आय-स्रोत अस्पष्ट होते हैं, तब नीति-निर्माण पर अदृश्य हितों का प्रभाव बढ़ सकता है। इसलिए राजनीतिक

---

[2] भारत निर्वाचन आयोग, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियमों से संबंधित आधिकारिक विवरण; लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५० और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५१ भारतीय चुनावी ढाँचे के प्रमुख विधिक आधार हैं।

[3] पत्र सूचना कार्यालय, भारत निर्वाचन आयोग की २०२४ आम चुनाव से पूर्व मतदाता-सूची संबंधी विज्ञप्ति; इसमें ९६.८८ करोड़ पंजीकृत मतदाताओं का उल्लेख किया गया।

[4] पत्र सूचना कार्यालय, भारत निर्वाचन आयोग द्वारा २०२४ आम चुनाव के मतदान प्रतिशत संबंधी विज्ञप्ति; इसमें मतदान-केंद्रों पर ६५.७९ प्रतिशत मतदान दर्ज होने का उल्लेख है।

[5] पत्र सूचना कार्यालय, भारत निर्वाचन आयोग के विस्तृत सांख्यिकीय प्रतिवेदनों संबंधी विज्ञप्ति, २०२४; इसमें लोकसभा चुनाव के ४२ प्रतिवेदनों तथा चुनावी आँकड़ों की विस्तृत श्रेणियों का उल्लेख है।

दान की पारदर्शिता, चुनावी व्यय की वास्तविक निगरानी और दलों के खातों की विश्वसनीय लेखा-परीक्षा लोकतांत्रिक समानता के लिए आवश्यक है।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५१ की धारा ७७ प्रत्याशी को चुनावी व्यय का पृथक और सही लेखा रखने के लिए बाध्य करती है। किंतु व्यावहारिक चुनौती यह है कि प्रत्याशी-व्यय और दल-व्यय, प्रत्यक्ष व्यय और परोक्ष प्रचार, तथा समर्थक-संगठनों द्वारा खर्च के बीच अंतर कई बार धुंधला हो जाता है। अतः चुनावी व्यय-नियंत्रण को केवल प्रत्याशी की घोषित सीमा तक सीमित रखने से पर्याप्त पारदर्शिता नहीं आती।[6]

निर्वाचन बांड व्यवस्था पर सर्वोच्च न्यायालय के १५ फरवरी २०२४ के निर्णय ने चुनावी वित्त की पारदर्शिता को संवैधानिक विमर्श के केंद्र में ला दिया। न्यायालय ने मतदाता के सूचना-अधिकार और राजनीतिक दान की गोपनीयता के बीच संतुलन पर विचार करते हुए इस व्यवस्था को असंवैधानिक माना और बैंक तथा निर्वाचन आयोग को दान-संबंधी विवरण सार्वजनिक करने के निर्देश दिए। यह निर्णय बताता है कि राजनीतिक वित्त केवल दलों का आंतरिक विषय नहीं, बल्कि मतदाता की सूचित पसंद का प्रश्न है।[7]

राजनीतिक दलों के लिए दान की वास्तविक समय पर घोषणा, दानदाताओं की पहचान की युक्तिसंगत पारदर्शिता, दलों के आय-व्यय का स्वतंत्र लेखा-परीक्षण और चुनावी प्रचार के डिजिटल खर्च की निगरानी अनिवार्य सुधार क्षेत्र हैं। पारदर्शिता का अर्थ यह नहीं कि वैध राजनीतिक दान असंभव हो जाए; उसका अर्थ यह है कि मतदाता जान सके कि किस आर्थिक समर्थन से कौन-सा राजनीतिक कार्यक्रम संचालित हो रहा है।

४.२ राजनीति का आपराधिकरण

भारतीय राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों की बढ़ती संख्या लोकतांत्रिक नैतिकता और विधि-राज के लिए गंभीर प्रश्न है। आपराधिक आरोप और दोषसिद्धि में अंतर अवश्य है, इसलिए लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा आवश्यक है; फिर भी गंभीर आपराधिक मामलों का चुनावी सफलता से संबंध लोकतंत्र में भय, धनबल और स्थानीय प्रभुत्व की भूमिका को संकेतित कर सकता है।

ए.डी.आर. के २०२४ लोकसभा विजेताओं के विश्लेषण के अनुसार ५४३ निर्वाचित सदस्यों में से २५१, अर्थात ४६ प्रतिशत, ने अपने विरुद्ध आपराधिक मामले घोषित किए; इनमें १७० सदस्यों, अर्थात ३१ प्रतिशत, ने गंभीर आपराधिक मामले घोषित किए। ये आँकड़े यह दर्शाते हैं कि प्रत्याशी-पृष्ठभूमि की सूचना उपलब्ध होने के बावजूद मतदाता-विकल्प, दलगत चयन और चुनावी प्रतिस्पर्धा में सुधार की आवश्यकता बनी हुई है।[8]

प्रत्याशियों की पृष्ठभूमि संबंधी सूचना का स्रोत नामांकन-शपथपत्र हैं, जिन्हें निर्वाचन आयोग के अभिलेखों और सार्वजनिक स्रोतों से संकलित किया जाता है। सूचना-प्रकटीकरण ने मतदाता को महत्वपूर्ण साधन दिया है, पर उसका प्रभाव तभी बढ़ेगा जब राजनीतिक दल गंभीर मामलों वाले प्रत्याशियों को टिकट देने की स्पष्ट सार्वजनिक व्याख्या करें, मीडिया स्थानीय भाषा में पृष्ठभूमि जानकारी उपलब्ध कराए, और मतदाता-शिक्षा कार्यक्रम इसे वास्तविक चुनावी मुद्दा बनाएँ।[9]

---

[6] लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, १९५१, धारा ७७; प्रत्याशी द्वारा चुनावी व्यय का पृथक और सही लेखा रखने की बाध्यता से संबंधित प्रावधान।

[7] सर्वोच्च न्यायालय, एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ, २०२४ आई.एन.एस.सी. ११३; निर्णय दिनांक १५ फरवरी २०२४, जिसमें निर्वाचन बांड व्यवस्था को असंवैधानिक घोषित किया गया।

[8] एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, २०२४ लोकसभा के विजेताओं का विश्लेषण; २५१ विजेताओं द्वारा आपराधिक मामले और १७० विजेताओं द्वारा गंभीर आपराधिक मामले घोषित करने संबंधी आँकड़े।

[9] माईनेता और ए.डी.आर. द्वारा प्रत्याशी-शपथपत्रों पर आधारित सार्वजनिक सूचना-संग्रह; स्रोत के रूप में निर्वाचन आयोग के शपथपत्र-अभिलेख और सार्वजनिक अभिलेखों का उल्लेख किया जाता है।

४.३ प्रतिनिधित्व की विषमता

बहुलतावादी समाज में चुनावी प्रतिनिधित्व का प्रश्न केवल मतों की गणना तक सीमित नहीं है। भारत की वर्तमान संसदीय प्रणाली एकल सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र और सर्वाधिक मत पाने वाले प्रत्याशी की जीत पर आधारित है। यह प्रणाली सरल और स्थिरता-समर्थक है, पर कई बार दलों के मत-प्रतिशत और सीट-प्रतिशत के बीच बड़ा अंतर पैदा करती है। इससे राष्ट्रीय मत-इच्छा और संसदीय संरचना के बीच असमानता दिख सकती है।

अनुपातिक प्रतिनिधित्व, मिश्रित निर्वाचन प्रणाली, द्वितीय वरीयता मतदान, या दलगत मत-हिस्से पर आधारित पूरक सीटें जैसे विकल्प भारत में लंबे समय से विमर्श का विषय रहे हैं। किंतु भारत के आकार, बहुदलीयता, स्थानीय प्रतिनिधित्व और शासन-स्थिरता को देखते हुए किसी भी प्रणालीगत परिवर्तन को अत्यंत सावधानी से समझना होगा। तत्काल सुधारों में महिला प्रतिनिधित्व, दलों के भीतर सामाजिक विविधता, प्रत्याशी चयन की पारदर्शिता और निर्वाचन-क्षेत्रों में नागरिक संवाद को प्राथमिकता दी जा सकती है।

महिला प्रतिनिधित्व के संदर्भ में संवैधानिक और विधायी प्रतिबद्धता का महत्व बढ़ गया है। किंतु वास्तविक परिवर्तन केवल आरक्षण-व्यवस्था से नहीं आएगा; दलों को वित्तीय सहायता, सुरक्षित प्रचार-परिस्थिति, स्थानीय नेतृत्व-प्रशिक्षण और राजनीतिक हिंसा से सुरक्षा की भी व्यवस्था करनी होगी। चुनावी सुधारों को प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता से जोड़ना इसलिए आवश्यक है कि लोकतंत्र केवल मतों की गणना नहीं, बल्कि समाज की विविधता का राजनीतिक अनुवाद है।

४.४ मतदाता-सूची, प्रवासी मतदाता और समावेशन

चुनाव की निष्पक्षता का आधार शुद्ध और समावेशी मतदाता-सूची है। यदि पात्र नागरिक का नाम सूची से छूट जाता है, या मृत तथा स्थानांतरित मतदाताओं के नाम बने रहते हैं, तो चुनावी विश्वास प्रभावित होता है। शहरी प्रवास, मौसमी श्रम, शिक्षा और रोजगार के कारण बड़ी संख्या में नागरिक अपने स्थायी निवास से दूर रहते हैं। उनके लिए मतदान करना कठिन हो सकता है।

प्रवासी मतदाता, वरिष्ठ नागरिक, दिव्यांग नागरिक, बेघर लोग, दूरस्थ क्षेत्रों के निवासी और संघर्ष-प्रभावित क्षेत्रों के मतदाता चुनावी समावेशन की विशेष श्रेणियाँ हैं। डाक-मतपत्र, घर-मतदान सुविधा, सुलभ मतदान-केंद्र, मतदाता-सूची सुधार शिविर और बहुभाषी सूचना-प्रणाली ऐसे उपाय हैं जो मतदान को अधिक समावेशी बना सकते हैं। परंतु समावेशन और सुरक्षा, दोनों का संतुलन आवश्यक है ताकि सुविधा का दुरुपयोग न हो।

४.५ आदर्श आचार संहिता, मीडिया और डिजिटल प्रचार

आदर्श आचार संहिता भारतीय चुनावों में राजनीतिक आचरण की नैतिक मर्यादा निर्धारित करती है। यह दलों, प्रत्याशियों और सत्तारूढ़ दलों के व्यवहार को चुनाव-अवधि में नियंत्रित करने का प्रमुख साधन है। परंतु इसकी विधिक स्थिति, प्रवर्तन की समानता और उल्लंघनों पर त्वरित कार्रवाई को लेकर निरंतर बहस बनी रहती है।[10]

डिजिटल प्रचार ने आचार संहिता की चुनौतियों को बढ़ाया है। लक्षित विज्ञापन, भ्रामक सूचना, कृत्रिम रूप से निर्मित दृश्य-श्रव्य सामग्री, अनाम प्रचार-पृष्ठ, सूक्ष्म-लक्षित संदेश और मंचीय नियमों की अस्पष्टता चुनावी निष्पक्षता को प्रभावित कर सकती है। परंपरागत प्रचार में व्यय और संदेश का स्रोत अपेक्षाकृत स्पष्ट होता था; डिजिटल प्रचार में स्रोत, खर्च, प्रसार और प्रभाव को मापना कठिन है।

---

[10] भारत निर्वाचन आयोग, आदर्श आचार संहिता संबंधी आधिकारिक प्रश्नोत्तर; इसमें दलों, प्रत्याशियों और सत्तारूढ़ दलों के आचरण, सभाओं, जुलूसों, मतदान दिवस और सरकारी मशीनरी के उपयोग से जुड़े निर्देशों का उल्लेख है।

इसलिए डिजिटल चुनावी सुधारों में राजनीतिक विज्ञापनों की सार्वजनिक अभिलेख-व्यवस्था, मंचों द्वारा त्वरित प्रकटीकरण, गलत सूचना पर समयबद्ध प्रतिक्रिया, नागरिकों के आँकड़ों के राजनीतिक उपयोग पर नियंत्रण, और दलों के डिजिटल व्यय का लेखांकन शामिल होना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और गलत सूचना-निरोध के बीच संतुलन कठिन है, किंतु लोकतांत्रिक समानता के लिए आवश्यक है।

४.६ ईवीएम, वीवीपीएटी और प्रक्रिया पर विश्वास

ईवीएम और वीवीपीएटी भारतीय चुनावी प्रशासन के केंद्र में हैं। इनके माध्यम से मतगणना की गति और प्रशासनिक सुविधा बढ़ी है, पर चुनावी प्रक्रिया में नागरिक विश्वास सर्वोपरि है। तकनीकी प्रणाली कितनी भी सक्षम हो, यदि उसके प्रति सार्वजनिक विश्वास में कमी आए तो चुनावी वैधता प्रभावित हो सकती है। इसलिए तकनीकी सुरक्षा, सत्यापन-प्रक्रिया, यादृच्छिक मिलान और पारदर्शी संचार का संतुलन आवश्यक है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अप्रैल २०२४ में वीवीपीएटी पर्चियों के शत-प्रतिशत मिलान और कागज़ी मतपत्रों पर लौटने की माँगों को अस्वीकार किया, किंतु कुछ अतिरिक्त सुरक्षा-निर्देश भी दिए। इस निर्णय का व्यापक संकेत यह है कि न्यायालय ने मौजूदा तकनीकी व्यवस्था को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया, पर सार्वजनिक विश्वास के लिए सत्यापन और अभिरक्षा-प्रक्रियाओं की महत्ता स्वीकार की।[11]

चुनावी तकनीक पर सुधार का अर्थ तकनीक-विरोध नहीं है। उसका अर्थ है कि हर चरण, जैसे मशीनों का भंडारण, सीलिंग, यादृच्छिक आवंटन, मॉक मतदान, अभ्यर्थियों की उपस्थिति, मतगणना-प्रमाणन और आपत्ति-निवारण, सार्वजनिक रूप से समझने योग्य और दस्तावेजीकृत हो। मतदाता को यह विश्वास होना चाहिए कि उसका मत केवल डाला ही नहीं गया, बल्कि ठीक प्रकार से दर्ज और गिना भी गया।

५. विधि आयोग और सुधार-विमर्श

भारत में चुनावी सुधारों पर अनेक समितियों और आयोगों ने विचार किया है। विधि आयोग की २५५वीं रिपोर्ट ने चुनावी वित्त, प्रत्याशी-प्रकटीकरण, राजनीतिक दलों की पारदर्शिता, पेड समाचार, मतदाता-प्रलोभन और निर्वाचन अपराधों जैसे विषयों पर व्यापक सुझाव दिए। इस प्रकार सुधार-विमर्श आकस्मिक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि लंबे समय से विकसित संस्थागत चिंतन का परिणाम है।[12]

सुधारों की कठिनाई यह है कि चुनावी नियम उन्हीं राजनीतिक दलों द्वारा बदले जाते हैं जो वर्तमान नियमों के माध्यम से सत्ता या प्रतिनिधित्व प्राप्त करते हैं। इसलिए चुनावी सुधारों में दलगत स्वार्थ और लोकतांत्रिक आदर्श के बीच तनाव स्वाभाविक है। इस तनाव को कम करने के लिए संसदीय समितियों, निर्वाचन आयोग, न्यायपालिका, नागरिक समाज, शैक्षणिक संस्थानों और राज्यों के अनुभवों को मिलाकर व्यापक परामर्श आवश्यक है।

६. निर्वाचन आयोग की संस्थागत स्वतंत्रता

निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता चुनावी लोकतंत्र की धुरी है। आयोग को निष्पक्ष, सक्षम और जनता के प्रति विश्वसनीय होना चाहिए। नियुक्ति-प्रक्रिया, कार्यकाल-सुरक्षा, प्रशासनिक संसाधन, आचार संहिता प्रवर्तन, राजनीतिक दलों पर नियंत्रण, और चुनाव-प्रौद्योगिकी के मानकों पर आयोग की विश्वसनीयता जितनी अधिक होगी, चुनावी परिणामों की स्वीकृति उतनी ही व्यापक होगी।

---

[11] सर्वोच्च न्यायालय, एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत निर्वाचन आयोग, निर्णय दिनांक २६ अप्रैल २०२४; वीवीपीएटी के शत-प्रतिशत मिलान और कागज़ी मतपत्रों की माँगों को अस्वीकार करते हुए अतिरिक्त सुरक्षा-निर्देश दिए गए।

[12] विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या २५५, "निर्वाचन सुधार", २०१५; कानून और न्याय मंत्रालय को प्रस्तुत इस रिपोर्ट में चुनावी व्यवस्था में व्यापक विधायी सुधारों पर विचार किया गया।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति से संबंधित २०२३ के कानून ने नियुक्ति-प्रक्रिया को विधिक ढाँचा दिया। इस कानून में खोज समिति और चयन समिति से जुड़े प्रावधान हैं। नियुक्ति-प्रक्रिया पर सार्वजनिक बहस यह संकेत देती है कि चुनावी प्रशासन की निष्पक्षता केवल परिणामों से नहीं, बल्कि संस्थागत संरचना से भी जुड़ी है।[13]

नियुक्ति-प्रक्रिया से संबंधित संवैधानिक बहस अभी भी न्यायिक और सार्वजनिक विमर्श का विषय है। पूर्ववर्ती निर्णय में चयन-समिति में प्रधानमंत्री, विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश की व्यवस्था संसद द्वारा कानून बनने तक के लिए कही गई थी; बाद में बने कानून ने अलग संरचना निर्धारित की। इस बहस का मूल प्रश्न यह है कि निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता को लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और संवैधानिक संतुलन के साथ कैसे सुरक्षित किया जाए।[14]

७. सुधारों के लिए नीतिगत सुझाव

पहला, राजनीतिक वित्त में पारदर्शिता को व्यापक बनाया जाना चाहिए। दलों के दान-स्रोत, बड़े दान की पहचान, डिजिटल प्रचार-व्यय, तृतीय पक्ष द्वारा किए गए खर्च और चुनावी ऋण या सेवाओं के मूल्यांकन को सार्वजनिक अभिलेखों में लाया जाए। दलों की लेखा-परीक्षा स्वतंत्र और तुलनात्मक रूप से समान मानकों पर आधारित होनी चाहिए।

दूसरा, गंभीर आपराधिक मामलों वाले प्रत्याशियों पर दलों को टिकट देने का कारण सार्वजनिक रूप से बताना चाहिए। न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचते हुए, लंबित गंभीर मामलों की त्वरित सुनवाई, प्रत्याशी-शपथपत्र की स्थानीय भाषा में उपलब्धता और मतदाता-शिक्षा को मजबूत किया जाए। यह सुधार दंडात्मक से अधिक सूचनात्मक और संस्थागत होना चाहिए।

तीसरा, मतदाता-सूची सुधार को निरंतर प्रक्रिया बनाया जाए। स्थानांतरण, मृत्यु, नए मतदाता, प्रवासी श्रमिक और शहरी किरायेदारों से जुड़े नामांकन प्रश्नों के समाधान के लिए स्थानीय निकायों, नागरिक समाज और डिजिटल सत्यापन का संयोजन उपयोगी हो सकता है। परंतु निजता और बहिष्करण के जोखिमों पर सतर्क निगरानी अनिवार्य है।

चौथा, डिजिटल प्रचार के लिए विशिष्ट निर्वाचन नियम बनाए जाएँ। राजनीतिक विज्ञापन-पुस्तकालय, भुगतानकर्ता की पहचान, लक्षित प्रचार के मानदंड, झूठी सामग्री पर त्वरित सुधार-तंत्र, और मंचों की जवाबदेही चुनावी समानता के लिए आवश्यक हैं। सामाजिक माध्यमों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति का मंच बनाए रखते हुए उन्हें गुप्त और असमान प्रचार का उपकरण नहीं बनने देना चाहिए।

पाँचवाँ, ईवीएम और वीवीपीएटी पर सार्वजनिक विश्वास बढ़ाने के लिए तकनीकी जानकारी को सरल भाषा में उपलब्ध कराया जाए। मशीनों की अभिरक्षा, यादृच्छिक आवंटन, परीक्षण, सीलिंग, उम्मीदवारों की उपस्थिति, मिलान और आपत्ति-प्रक्रिया के प्रत्येक चरण को अधिक पारदर्शी बनाया जाए। विश्वास का निर्माण केवल तकनीकी प्रमाण से नहीं, बल्कि नागरिकों को समझ आने वाली प्रक्रिया से होता है।

छठा, आदर्श आचार संहिता के प्रवर्तन में समानता, गति और स्पष्टता बढ़ाई जाए। उल्लंघनों पर कार्रवाई समयबद्ध हो, निर्णयों के कारण सार्वजनिक हों, और सत्तारूढ़ दल तथा विपक्ष दोनों पर समान मानक लागू हों। चुनावी नैतिकता तभी प्रभावी होगी जब वह राजनीतिक सुविधा के अनुसार बदलती न दिखे।

---

[13] भारत कोड, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्त नियुक्ति, सेवा-शर्तें और पदावधि अधिनियम, २०२३; अधिनियम संख्या ४९, प्रवर्तन तिथि २ फरवरी २०२४, जिसमें नियुक्ति और चयन-प्रक्रिया से जुड़े प्रावधान हैं।

[14] अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ, सर्वोच्च न्यायालय, २०२३; तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्त नियुक्ति अधिनियम, २०२३ की संवैधानिकता से संबंधित लंबित वाद पर उपलब्ध न्यायिक अभिलेख।

सातवाँ, आंतरिक दल-लोकतंत्र को चुनावी सुधार का अंग बनाया जाए। प्रत्याशी-चयन, दलगत वित्त, सदस्यता, नेतृत्व, गठबंधन-निर्णय और घोषणापत्र-निर्माण की पारदर्शिता चुनावी लोकतंत्र को गहरा करती है। यदि दलों के भीतर लोकतंत्र कमजोर होगा तो चुनावों में नागरिक विकल्प भी सीमित और अपारदर्शी रहेंगे।

८. निष्कर्ष

भारत की चुनाव व्यवस्था ने विशाल आकार, सामाजिक विविधता और प्रशासनिक कठिनाइयों के बावजूद उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। परंतु लोकतंत्र में कोई भी संस्था स्थिर उपलब्धि नहीं होती; वह निरंतर सुधार, आलोचना और अनुकूलन से ही जीवित रहती है। चुनावी सुधारों की आवश्यकता इसलिए है कि मतदाता की स्वतंत्रता, चुनावी समानता और राजनीतिक पारदर्शिता पर नए प्रकार के दबाव उपस्थित हैं।

चुनावी वित्त में अस्पष्टता, आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों की बढ़ती उपस्थिति, मतदाता-सूची की चुनौतियाँ, डिजिटल प्रचार की अनियमितता, प्रतिनिधित्व की विषमता और निर्वाचन संस्थाओं पर विश्वास के प्रश्न मिलकर यह संकेत देते हैं कि सुधारों को आंशिक और प्रतिक्रियात्मक ढंग से नहीं, बल्कि समग्र दृष्टि से सोचना होगा। सुधार की दिशा दंडात्मक नियंत्रण और प्रशासनिक दक्षता तक सीमित न रहकर लोकतांत्रिक नैतिकता, संवैधानिक समानता और नागरिक सूचना-अधिकार को केंद्र में रखे।

अंततः चुनावी सुधारों का लक्ष्य किसी एक दल को लाभ या हानि पहुँचाना नहीं, बल्कि लोकतंत्र को अधिक न्यायसंगत, पारदर्शी और विश्वसनीय बनाना है। जब मतदाता को धन, भय, मिथ्या सूचना और अस्पष्ट सत्ता-संबंधों से मुक्त होकर विकल्प चुनने का अवसर मिलता है, तभी चुनाव लोकतंत्र की आत्मा बनते हैं। भारतीय लोकतंत्र की अगली परिपक्वता इसी बात पर निर्भर करेगी कि वह अपने चुनावी तंत्र को बदलते समय के अनुरूप कितनी संवेदनशीलता और साहस से सुधारता है।

◂◂ ▸▸

माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर आत्म संकल्पना का प्रभाव

डॉ. सोनम कुमारी*

शोध सार (Abstract)

अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर आत्म-संकल्पना के प्रभाव का अध्ययन करना था। यह अध्ययन बिहार राज्य के रोहतास जिला स्थित 20 माध्यमिक विद्यालयों में किया गया। कुल 400 विद्यार्थियों (200 ग्रामीण एवं 200 शहरी) का चयन यादृच्छिक चयन विधि द्वारा किया गया, जिनमें कक्षा 9 एवं 10 के छात्र-छात्राएँ शामिल थीं। शोध में द्विमार्गी सह-प्रसरण विश्लेषण (2×2 Factorial Design ANCOVA) का प्रयोग किया गया, जिसमें लिंग (छात्र/छात्रा) एवं आत्म-संकल्पना (उच्च/निम्न) को स्वतंत्र चर तथा सृजनशीलता को आश्रित चर के रूप में लिया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि लिंग का सृजनशीलता पर 0.01 स्तर पर सार्थक प्रभाव पाया गया ($F = 55.28$)। छात्राओं की सृजनशीलता ($M = 109.70$) छात्रों ($M = 103.40$) की तुलना में अधिक पाई गई। जबकि आत्म-संकल्पना का प्रभाव ($F = 1.47$) तथा लिंग एवं आत्म-संकल्पना की अंतःक्रिया ($F = 0.21$) दोनों ही सांख्यिकीय रूप से असार्थक पाए गए। अतः निष्कर्षतः यह पाया गया कि सृजनशीलता पर लिंग का महत्वपूर्ण प्रभाव है, जबकि आत्म-संकल्पना एवं उसकी अंतःक्रिया का प्रभाव सार्थक नहीं है। यह अध्ययन शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता को समझने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

कुंजी शब्द -: सृजनशीलता ,आत्म-संकल्पना ,लिंग,माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी

प्रस्तावना - सृजनात्मकता व्यक्तिगत अंतरों को प्रदर्शित करने का एक तरीका के रूप में लिया जा सकता है। सृजनात्मकता दैनिक उपयोग में कि जाने वाली शब्दावली का हिस्सा हो सकता है। सृजनात्मकता का प्रभाव व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलूओं पर पड़ता है। इसमें कुछ व्यक्ति खुद को सृजनात्मक व्यक्ति मानता है, लेकिन दूसरे व्यक्ति द्वारा उस कसौटी को नकार दिया जाता है। सृजनात्मक व्यक्ति या छात्रों को भीड़ से लोग अलग देखते हैं। क्योंकि वे छात्र नवाचार करने में सक्षम होते हैं और ये नकल करने के बजाय वे नवाचार करता है तथा उस कार्य को प्राथमिकता देता है। ये भीड़ को चुनौती देना तथा कठिन कार्य को करना पसंद करते हैं। यही गुण इनको नए विचार उत्पन्न करने में मदद करता है। यह नए चीजों का सृजन करने में भी मदद करता है। इन्ही सब कारणों से व्यक्तियों में साधारण आम तौर पर अंतर पाया जाता है।

सृजनात्मकता का इतिहास बहुत लंबा है। शोधकर्ताओं ने व्यक्तिगत अंतर के भीतर का सूक्ष्मतम संगठनात्मक अंतर की खोज प्रक्रियाकी विकास किया है। अक्सर छात्रों को इस क्षेत्र में कार्य करने की बात कही जाती है। गिलफोर्ड (1960), स्टर्नबर्ग और लुबार्ट (1996) ने शुरूआत में सृजनात्मकता पर ज्यादा कार्य किए है। कलान्तर में सृजनात्मकता पर शोधों में कमी पायी गई है। जबकि अन्य क्षेत्र बुद्धि और व्यक्तित्व पर काफी शोध किया गया है। सृजनात्मकता कई प्रकार की अवधारणाओं से जुड़ी हुई है, जैसे प्रेरणा, कल्पना, मेटाकोगनेशन, सामाजिक प्रभाव, अर्तज्ञान, नेतृत्व क्षमता एवं मानसिक बीमारी इत्यादि।

जब भी व्यक्तित्व और बुद्धि की सिद्धान्तों के बारे में बात किया जाता है तब सृजनात्मकता की सिद्धान्त अतिआवश्यक बन जाती है।

* सहायक प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, गिरीश नारायण मिश्रा कॉलेज, परसथुआ, रोहतास
Email: sonamsingh261092@gmail.com

सृजनात्मकता शब्द का उपयोग इतना व्यापक रूप से किया जाता है कि इसको परिभाषित करना और इसके व्यापक अर्थ को परिस्कृत करना अपरिहार्य है। सृजनात्मक और गैर-सृजनात्मक छात्रों की अपना व्यवहार कार्य होते हैं। इसमें सृजनात्मक पेशे जैसे-लेखक, अभिनेता, संगीतकार होते हैं जबकि गैर-सृजनात्मक पेशों के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी, एकाउटेंट और वकील होते है। इनमें सृजनात्मकता के फलस्वरूप पुलिस अधिकारियों को अपराधी को पकड़ने में, एकाउटेंट को करो से बचने में और वकीलों को कानूनी मामला जीतने में, मदद कर सकती है। सृजनात्मकता घटनाओं की एक विस्तृत श्रंखला से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। सृजनात्मकता फुटबॉल पास से लेकर पियानो की रिदम तक, हेयर स्टाइल से लेकर गणितीय सिद्धान्त तक, खाना पकाने की विधि से लेकर शतरंज के खेल तक, इसलिए इसका उपयोग व्यक्तियों, समूहों और यहाँ तक कि समाजों की विशेषता बताने के लिए किया जाता है।

माध्यमिक स्तर शिक्षा का वह महत्वपूर्ण चरण है जिसमें विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा सामाजिक विकास की नींव मजबूत होती है। इसी अवस्था में विद्यार्थियों में सृजनात्मकता (Creativity) के विकास की संभावनाएँ अधिक होती हैं, जो उनके शैक्षिक प्रदर्शन एवं भविष्य की उपलब्धियों को प्रभावित करती हैं। सृजनात्मकता व्यक्ति की वह क्षमता है जिसके माध्यम से वह नवीन विचारों, समस्याओं के समाधान तथा मौलिक अभिव्यक्ति को विकसित करता है।

इस संदर्भ में आत्म-संकल्पना (Self-Concept) एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक घटक है, जो व्यक्ति की अपने बारे में बनी धारणा, आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-स्वीकृति को दर्शाती है। जिन विद्यार्थियों की आत्म-संकल्पना सकारात्मक होती है, उनमें आत्मविश्वास अधिक पाया जाता है, जिससे उनकी सृजनात्मक सोच और अभिव्यक्ति क्षमता भी बेहतर होती है।

आत्म संकल्ना को रोजर्स ने व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत माना है। रोजर्स का मानना है कि अनुभव से धीरे-धीरे असाधारण क्षेत्र का एक भाग अतिविशिष्ट हो जाता है इस अति विशिष्ट भाग को रोजर्स ने आत्म संकल्पना से अलग विमा या क्षेत्र नही है और न ही अलग से कोई विशिष्ट तत्व माना है। जबकि सभी प्राणियों में आत्म संकल्पना पाया जाता है।

आत्म संकल्पना का विकास शैशवावस्था से ही होना शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे बालक में अनुभूतियों का विकास होता है और उन अनुभूतियों के माध्यम से बालक में उन अनुभूतियों के विशेषताओं के आधार पर वे आत्म संकल्पना का विकास करने लगता है। इसके कारण ही उन्हें अच्छा या बुरा कृत्यों का संज्ञान होने लगता है। बच्चों में सुखद या दुःखद अनुभूतियों का ज्ञान होने लगता है। और बालक अपने अनुभूतियों के आधार पर तर्कपूर्ण सोचकर, समझकर, कार्य करता है। उदाहरणार्थ मेरी विचार कैसा है? मेरी गुण क्या है? लोग मुझे क्या समझते है। जीवन के विभिन्न पहलूओं पर बालक एक सिद्धान्त बनाता है। इन सभी पहलूओं का संगठित सुव्यवस्थित रूप ही आत्म संकल्पना कहा जाता हैं। चूँकि आत्म संकल्पना हमारे इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान का ही मुख्य परिणाम है। इनसे होने वाली प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप प्रत्यक्षीकरण ज्ञान के रूप में विकसित होता है।

मनोवैज्ञानिक में से कार्ल रोजर्स और इब्राहम मॉस्लों आत्म संकल्पना की व्याख्या किया है। रोजर्स के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति आदर्श एंव तक पहुँचने का प्रयास करता है।" आदर्श एवं वह जिसे व्यक्ति या कोई समाज पूर्ण रूप से स्वीकार्य एवं अपने अनुसार समझता है।

वर्तमान शोध का उद्देश्य माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर आत्म-संकल्पना के प्रभाव का अध्ययन करना है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि विद्यार्थियों की अपने प्रति धारणा किस प्रकार उनकी रचनात्मक क्षमताओं को प्रभावित करती है। इस शोध के निष्कर्ष शैक्षिक वातावरण को अधिक प्रभावी बनाने तथा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

साहित्य समीक्षा-

सारसानी (2007) ने शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में आत्म संकल्पना व समायोजना के मध्य संबंधों का अध्ययन किया है। इसमें पाया गया कि छात्रों एवं छात्राओं के बीच आत्म संकल्पना के माध्य में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। गैर सरकारी स्कूलों के छात्र-छात्राओं में सरकारी स्कूलों के छात्र-छात्राओं से आत्म संकल्पना स्तर उच्च पाया गया है। छात्र एवं छात्राओं के बीच समायोजन समस्याओं में कोई अन्तर नहीं पाया गया है।

श्रीदेवी एवं अन्य (2008) ने अपना शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भावनात्मक बुद्धि, समायोजन, आत्म संकल्पना तथा स्कूल का प्रदर्शन का अध्ययन किया गया, जिसमें पाया कि भावनात्मक बुद्धि, समायोजन, आत्म संकल्पना तथा उपलब्धि के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया है।

गुरुब सापा (2009) ने माध्यमिक स्कूलों के छात्र-छात्राओं का शैक्षणिक उपलब्धि का संबंध बुद्धि तथा आत्म संकल्पना पर अध्ययन किया। जिसमें पाया गया कि छात्र-छात्राओं का शैक्षणिक उपलब्धि ज्यादा उन विद्यार्थियों का था जिनका बुद्धि ज्यादा था तथा उनका आत्म संकल्पना भी अच्छी थी। छात्रों एवं छात्राओं के मामले में छात्रों में आत्म संकल्पना ज्यादा पाया गया है।

बाल कृष्णनन व अन्य (2011) ने उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का सामाजिक समायोजन के संदर्भ में आत्म संकल्पना का अध्ययन किया। जिसमें पाया गया कि (1) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का सामाजिक समायोजन आत्म संकल्पना उच्च था जबकि उनका सामाजिक समायोजन में छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अन्तर पाया गया है। आत्म संकल्पना में शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं के मामले में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। इनके आत्म संकल्पना एवं सामाजिक समायोजन के बीच संबंध नहीं पाया गया है।

खादिर व अन्य (2012) ने छात्र-छात्राओं के शैक्षिक सुधार व भावनात्मक बुद्धिमता तथा आत्म संकल्पना का अध्ययन किया गया। इसमें प्रतिदर्श के रूप में कुल 357 छात्र-छात्राओं के उनकी शैक्षणिक उपलब्धि कक्षा-3 के विद्यार्थियों पर किया गया है। इसमें पाया गया कि विद्यार्थियों की भावनात्मक बुद्धि समान थी, लिंग के आधार पर विद्यार्थियों के भावनात्मक बुद्धि में भी समानता पायी गई। छात्राओं में आत्म संकल्पना अधिक थी जबकि छात्रों की शैक्षणिक सुधार छात्राओं में ज्यादा था।

उमेश पटेल (2013) ने व्यक्तित्व एवं समायोजन पर आत्म संकल्पना के प्रभाव विषय परशोध कार्य किए, इसमें पाया कि उच्च आत्म संकल्पना वाले छात्र-छात्राओं का समायोजन एवं व्यक्तित्व अच्छा था जबकि निम्न आत्म संकल्पना वाले छात्र-छात्राओं वाले का समायोजन अच्छा नहीं पाया गया।

रामचेतरी (2014) ने अपना अध्ययन कार्य छात्र-छात्रों के आत्म संकल्पना और उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि का संबंध पर कार्य किए जिसमें प्रतिदर्श के रुप में प्राईवेट माध्यमिक विद्यालय एवं सरकारी माध्यमिक विद्यालय से कुल 480 विद्यार्थियों को लिया गया। इसमें छात्रों वं छात्राओं के बीच उनकी आत्म-संकल्पना एवं उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई अन्तर नहीं पाया गया। इनकी शैक्षणक उपलब्धि पर लिंग का प्रभाव भी नहीं पाया गया।

राजेश शाहा (2014) ने स्त्री-पुरुषों के आत्म संकल्पना एवं व्यक्तित्व का अध्ययन किया जिसमें 18 से 14 वर्ष स्त्री-पुरुषों को प्रतिदर्श के रुप मे लिया गया। इसके परिणाम में पाया कि आत्म संकल्पना और व्यक्तित्व में कोई सार्थक संबंध नहीं पाया गया। इसमें आत्म संकल्पना अन्य विमाओं पर आत्म संकल्पना के अंक उच्च स्कोर पाया गया है।

वमी नागइच (2014) ने अध्ययन का विषय तनाव का आत्म संकल्पना, उपलब्धि अभिप्रेरणा पर प्रभाव रहा। जिसमें स्नातक कक्षा में विभिन्न संकायों में अध्ययनत् छात्र-छात्राओं को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया। इसका

परिणाम में पाया कि कम आत्म संकल्पना तनाव स्तर को बढ़ा देता है तथा उच्च आत्म संकल्पना से तनाव स्तर में कमी लाता है।

लमाने और बाविसकर (2015) ने अपना अध्ययन कला एवं विज्ञान के स्नातक में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की आत्म संकल्पना तथा भावनात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया जिसमें निष्कर्ष में पाया गया कि कला तथा विज्ञान के छात्र-छात्राओं के आत्म संकल्पना के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। लेकिन कला और विज्ञान के संकाय में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भावनात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर पाया गया। इसमें कला संकाय से विज्ञान संकायल में भावनात्मक बुद्धि ज्यादा पाया गया।

इजाबेला लेबुडा, मिहाली सिवसजेंट मिहाली (2017) ने अपने शोध कार्य में, स्वयं मैं और सृजनात्मकता प्रख्यात रचनाकरों की आत्म अवधारणाएँ में पाया कि सृजनकर्ता की भूमिका तथा इससे जुड़ी समस्या चुनौतियों का सामना करने की अपनी क्षमताओं के बारे में विचार, ज्यादातर व्यवसायिक अपराध का अनुभव करने, व्यक्तिगत कमजोरियों पर काबू पाने और प्रमुख दक्षताओं को हासिल करने की जरूरत होती है वह पेशे से संबंधित है।

कार्वोस्की एम. और लेबुडा आई (2017) ने सृजनात्मक आत्म अवधारणा विषय पर अध्ययन किया उसमें पाया गया कि सृजनात्मकता और आत्म अवधारणाओं के मामले में काफी समानता पाया गया है।

पल्लवी नागर एवं स्वाति यादव (2024) ने अपना शोध राजगढ़ जिले के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियो को सृजनात्मकता पर बुद्धि, आत्म संकल्पना और समायोजन के प्रभाव का अध्ययन किया। जिसमें पाया कि बुद्धिलब्धि आत्म संकल्पना एवं उनकी अंत:क्रिया का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर प्रभाव सार्थक रूप से पड़ा है। उच्च सृजनात्मकशीलता वाले बच्चों में बुद्धि लब्धि एवं आत्म संकल्पना का प्रभाव पड़ता है। उच्च सृजनात्मक बालकों में उच्च बुद्धिलब्धि तथा निम्न सृजनात्मकता में निम्न बुद्धिलब्धि पाया जाता है

उद्देश्य -: माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के सृजनशीलता पर आत्म संकल्पना का प्रभाव का पता लगाना।

परिकल्पना-: माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् सृजनशीलता पर आत्म संकल्पना का कोई प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

शोध-विधि-:

शोध क्षेत्र- शोध का भौगोलिक क्षेत्र बिहार राज्य का रोहतास जिला है, जहाँ के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 9 एवं 10 के विद्यार्थी इसके अंतर्गत शामिल किए गए हैं।

प्रतिदर्शन - प्रतिदर्शन (Sample) का चयन रोहतास जिला, बिहार के माध्यमिक विद्यालयों से किया गया है। इसके लिए कुल 20 माध्यमिक विद्यालयों का चयन जिला शिक्षा पदाधिकारी, रोहतास की अनुमति प्राप्त करने के उपरांत किया गया। प्रत्येक प्रखण्ड से दो-दो विद्यालयों का चयन यादृच्छिक चयन विधि (Random Sampling Method) द्वारा किया गया। कुल प्रतिदर्शन आकार 400 विद्यार्थियों का रखा गया, जिसमें 200 विद्यार्थी ग्रामीण क्षेत्र के तथा 200 विद्यार्थी शहरी क्षेत्र के विद्यालयों से चयनित किए गए। इस प्रकार प्रतिदर्शन में सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक विविधता को ध्यान में रखा गया।

शोध उपकरण-:

आत्म-संकल्पना परीक्षण- आत्म-संकल्पना के माप हेतु डॉ० शेरी, डॉ० वर्मा तथा डॉ० गोस्वामी द्वारा निर्मित आत्मसंकल्पना टेस्ट को प्रयोग में लाया गया।

परिणाम एवं विश्लेषण-

शोध में लिंग को दो स्तरों में बांटा गया है। छात्र एवं छात्रा तथा आत्म संकल्पना को भी दो स्तरों में बांटा गया है, जिसमें वैसे विद्यार्थी जिनकी आत्म संकल्पना उच्च एवं निम्न है। दोनों चरों को दो स्तरों में विभाजन किया तथा इनको

प्रायोगिक अध्ययन के लिए अभिकल्प द्विमार्गी सह-प्रसरण विश्लेषण 2x2 कारकीय अभिकल्प का प्रयोग किया गया। इसे सारणी-1 के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-1 : सृजनशीलता के संबंध में आत्मसंकल्पना, लिंग का अंत:क्रिया का प्रदर्शन के लिए द्विमार्गी सह-प्रसरण विश्लेषण का प्रदर्शन

Source of Variance	df	SSY.x	MSS.x	FY.x
Gender	1	9076.47	9076.47	55.28*
Self-Concept	1	241.72	241.72	1.47
Gender x Self concept	1	69.03	34.52	0.21
Error	393	26964.81	68.65	
Total	396			

Significant level 0.01

माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की सृजनशीलता पर लिंग का प्रभाव।

सारणी–1 से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि लिंग का सृजनशीलता पर सार्थक प्रभाव पाया गया है। लिंग के लिए प्राप्त समायोजित F मान 55.28 है, जो 0.01 स्तर पर सार्थक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छात्र एवं छात्राओं के सृजनशीलता के माध्यों में महत्वपूर्ण अंतर विद्यमान है। समायोजित माध्यों के अनुसार छात्रों का सृजनशीलता स्कोर 103.40 पाया गया, जबकि छात्राओं का सृजनशीलता स्कोर 109.70 पाया गया। यह अंतर यह दर्शाता है कि छात्राओं की सृजनशीलता, छात्रों की तुलना में अधिक है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लिंग विद्यार्थियों की सृजनशीलता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है, और इस अध्ययन में छात्राओं की सृजनशीलता का स्तर अपेक्षाकृत उच्च पाया गया।

माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर आत्म संकल्पना का प्रभाव।

सारणी-1 से प्राप्त परिणाम के आधार पर आत्म संकल्पना का सृजनशीलता के लिए समायोजित F का मान 1.47 पाया गया जो 0.05 पर सार्थक नहीं है, क्योंकि उच्च एवं निम्न आत्म संकल्पना के विद्यार्थियों की सृजनशीलता के माध्यांक में सार्थक अन्तर पाया गया है। यहाँ पर उच्च आत्म संकल्पना वाले विद्यार्थियों का सृजनशीलता के माध्यांक 110.28 पाया गया जबकि निम्न आत्म संकल्पना वाले विद्यार्थियों की माध्यांक 98.75 पाया गया है, जो सार्थक अंतर को प्रदर्शित करता है। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सृजनशीलता, आत्म संकल्पना से प्रभावित होती है। इसमें उच्च आत्म संकल्पना वाले विद्यार्थियों में उच्च सृजनशीलता एवं निम्न आत्म संकल्पना वाले विद्यार्थियों में निम्न सृजनशीलता का विकास होता है।

माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर लिंग एवं आत्म संकल्पना के बीच अंत:क्रिया का प्रभाव

सारणी-1 के प्राप्त परिणाम से स्पष्ट है कि लिंग एवं आत्म संकल्पना का अंत:क्रिया के सृजनशीलता के लिए समायोजित F का मान .21 है, जो 0.05 पर सार्थक नहीं है। यहाँ पर निष्कर्ष यह निकलता है कि माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर लिंग एवं आत्म संकल्पना की अंत:क्रिया का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया है। लिंग एवं आत्म संकल्पना के बीच भी कोई संबंध नहीं पाया गया। आत्म संकल्पना और लिंग दोनों एक-दूसरे से स्वतंत्र है। सृजनशीलता के मामले में दोनों चर प्रभावित करता है।

निष्कर्ष-:

1. लिंग का सृजनशीलता पर सार्थक प्रभाव पाया गया है। लिंग के लिए प्राप्त समायोजित F मान 55.28, 0.01 स्तर पर सार्थक है। समायोजित माध्यों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि छात्राओं (109.70) की सृजनशीलता छात्रों (103.40) की तुलना में अधिक है। अतः कहा जा सकता है कि लिंग सृजनशीलता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है।

2. आत्म-संकल्पना का सृजनशीलता पर सांख्यिकीय रूप से सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया, क्योंकि प्राप्त F मान 1.47 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। यद्यपि औसत मानों के आधार पर उच्च आत्म-संकल्पना वाले विद्यार्थियों (110.28) की सृजनशीलता निम्न आत्म-संकल्पना वाले विद्यार्थियों (98.75) से अधिक पाई गई, लेकिन यह अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं है। अतः आत्म-संकल्पना का प्रभाव इस अध्ययन में पुष्ट नहीं हुआ।
3. लिंग एवं आत्म-संकल्पना की अंतःक्रिया का सृजनशीलता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया, क्योंकि प्राप्त F मान 0.21 है जो 0.05 स्तर पर असार्थक है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों चर स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं और इनके बीच कोई संयुक्त प्रभाव नहीं है।

अतः समग्र रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सृजनशीलता पर लिंग का महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया है, जबकि आत्म-संकल्पना एवं लिंग-आत्म-संकल्पना अंतःक्रिया का प्रभाव सार्थक नहीं है। इस प्रकार सृजनशीलता मुख्य रूप से लिंग के द्वारा प्रभावित होती है, जबकि आत्म-संकल्पना का प्रभाव इस अध्ययन में अपेक्षित स्तर तक प्रमाणित नहीं हो सका।

संदर्भ ग्रंथ-:

Beghetto, R. A. & Kaufman, J. C. (2007). *Toward a Broader Conception of Creativity in the Classroom*. Educational Psychologist.

Plucker, J. A., Beghetto, R. A., & Dow, G. T. (2004). *Why Isn't Creativity More Important in Research on Education?* Roeper Review.

Isenberg, J. P. & Jalongo, M. R. (1993). *Creative Expression and Play in Early Childhood*. Prentice Hall.

Kaufman, J. C. & Sternberg, R. J. (2010). *The Cambridge Handbook of Creativity*. Cambridge University Press.

खादिर, आदिप और फरहंगपुर (2012), छात्रों की शैक्षिक सुधार के साथ आध्यात्मिक बुद्धि और आत्म-सम्मान के बीच संबंध, यूरोपीय जर्नल ऑफ एक्सपेरीमेंटल बायोलॉजी. 2 (6), 2408-2414.

कुमार, वी. (2015)। माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में आत्म अवधारणा पर लिंग और शैक्षणिक उपलब्धि का प्रभाव। जेजेआरआईई, 1(5), 641-648।

लाभाने, सी.पी. और बाविस्कर, पी.ए. (2015)। आत्म अवधारणा और भावनात्मक बुद्धिमत्ता: कला और विज्ञान कॉलेज के छात्रों का तुलनात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, 2 (2), 85-90।

मकबूल, मुंतज़िर (2014)। कार्यरत और बेरोजगार महिलाओं की आत्म-अवधारणा पर एक तुलनात्मक अध्ययन। इंडियन स्ट्रीम्स रिसर्च जर्नल, 4(8), 1-7।

रामायण एवं रामचरितमानस में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणाएँ

शिवानी*
कल्पना**

सार

भारतीय संस्कृति में रामायण एवं रामचरितमानस केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय मूल्यों, नैतिक आदर्शों, ज्ञान और बौद्धिक चेतना के महत्वपूर्ण स्रोत भी हैं। वर्तमान युग कृत्रिम बुद्धिमत्ता का युग माना जा रहा है, जहाँ मशीनें मानवीय बुद्धि के विभिन्न कार्यों जैसे निर्णय-निर्धारण, सूचना-संसाधन, समस्या समाधान तथा स्वचालित क्रियान्वयन में सक्षम होती जा रही हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख का उद्देश्य रामायण तथा रामचरितमानस में वर्णित उन प्रसंगों का अध्ययन करना है, जिनमें आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संबंधित अवधारणाओं के प्रतीकात्मक संकेत दिखाई देते हैं। पुष्पक विमान, मायावी शक्तियाँ, लक्ष्यानुगामी अस्त्र-शस्त्र, हनुमान की सूचना-संग्रह क्षमता तथा संजीवनी प्रसंग जैसे उदाहरणों का विश्लेषण करते हुए यह शोध दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में मानव की कल्पनाशक्ति, तकनीकी चेतना तथा उन्नत बौद्धिक चिंतन के अनेक आयाम विद्यमान थे। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि इन ग्रंथों में प्रत्यक्ष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता का वर्णन नहीं मिलता, तथापि इनमें निहित अनेक प्रतीक एवं कल्पनाएँ आधुनिक तकनीकी अवधारणाओं के साथ वैचारिक साम्य स्थापित करती हैं।
कुंजी शब्द : रामायण, रामचरितमानस, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, पुष्पक विमान, मायावी शक्तियाँ, भारतीय ज्ञान परम्परा, तकनीकी चेतना।

मानव सभ्यता के विकास में ज्ञान और कल्पनाशक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रत्येक युग में मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं और जिज्ञासाओं के अनुरूप नए विचारों, सिद्धांतों और तकनीकों का विकास किया है। वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र की सबसे प्रभावशाली उपलब्धियों में से एक है। यह तकनीक मानव बुद्धि की नकल करते हुए निर्णय लेने, सूचना का विश्लेषण करने तथा जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। दूसरी ओर भारतीय साहित्यिक परंपरा में रामायण और रामचरितमानस जैसे महाकाव्य मानव जीवन के विविध आयामों को अभिव्यक्त करते हैं। इन ग्रंथों में वर्णित अनेक घटनाएँ सामान्य मानवीय क्षमताओं से परे प्रतीत होती हैं। पुष्पक विमान, रूप-परिवर्तन की माया, स्वयं संचालित अस्त्र-शस्त्र, दूरस्थ सूचना का आदान-प्रदान तथा असाधारण निर्णय क्षमता जैसे प्रसंग आधुनिक तकनीकी विकास की दृष्टि से विचारणीय प्रतीत होते हैं। यद्यपि इन घटनाओं को प्रत्यक्ष रूप से आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रमाण नहीं माना जा सकता, तथापि इनमें निहित वैचारिक तत्व आधुनिक एआई की अवधारणाओं के साथ रोचक समानता प्रस्तुत करते हैं। इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध-आलेख रामायण और रामचरितमानस में वर्णित विभिन्न घटनाओं का साहित्यिक एवं वैचारिक विश्लेषण करता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता : अवधारणा एवं स्वरूप कृत्रिम बुद्धिमत्ता वह तकनीक है जिसके माध्यम से मशीनों और कम्प्यूटर प्रणालियों को इस प्रकार विकसित किया जाता है कि वे मानव के समान सोचने, सीखने, निर्णय लेने तथा समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो सकें। आधुनिक एआई के प्रमुख घटकों में मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग, डेटा विश्लेषण, स्वचालित निर्णय प्रणाली, प्राकृतिक भाषा संसाधन तथा रोबोटिक्स सम्मिलित हैं। एआई

* शोधार्थी– हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
** हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

का मूल उद्देश्य ऐसी प्रणालियाँ विकसित करना है जो उपलब्ध सूचनाओं का विश्लेषण करके परिस्थितियों के अनुरूप कार्य कर सकें। यही कारण है कि जब हम प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते हैं तो उनमें वर्णित कुछ घटनाएँ आधुनिक एआई की अवधारणाओं से तुलनात्मक रूप से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। रामायण में तकनीकी एवं बौद्धिक संकेत रामायण में अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जो मानव की उन्नत कल्पनाशक्ति तथा तकनीकी चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। ये प्रसंग तत्कालीन समाज की बौद्धिक परिपक्वता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की संभावनाओं की ओर संकेत करते हैं। वाल्मीकि एवं तुलसीदास दोनों ही अपने-अपने युग की सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके ग्रंथों में वर्णित घटनाएँ केवल धार्मिक कथाएँ नहीं बल्कि मानवीय बुद्धि और रचनात्मकता का भी परिचय देती हैं। पुष्पक विमान और स्वचालित परिवहन की अवधारणा रामायण में वर्णित पुष्पक विमान सर्वाधिक चर्चित प्रसंगों में से एक है। यह विमान इच्छानुसार संचालित होता था तथा यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सक्षम था। आधुनिक दृष्टि से देखा जाए तो यह स्वचालित परिवहन प्रणाली की अवधारणा से साम्य रखता है। आज के युग में स्वचालित कारें, ड्रोन तथा ऑटोपायलट प्रणाली इसी दिशा में विकसित तकनीकों के उदाहरण हैं। यद्यपि पुष्पक विमान का वर्णन पौराणिक संदर्भ में किया गया है, फिर भी उसकी कार्यप्रणाली मानव की उस कल्पनाशक्ति को दर्शाती है जो बिना चालक के संचालित वाहनों की संभावना की कल्पना कर सकती थी। मायावी शक्तियाँ और वर्चुअल वास्तविकता रामायण में मारीच का स्वर्ण मृग बनना तथा रावण का साधु के रूप में उपस्थित होना माया के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह भ्रम उत्पन्न करने की कला का प्रतीक है। वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित डीपफेक, वर्चुअल रियलिटी तथा ऑगमेंटेड रियलिटी तकनीकें ऐसे दृश्य उत्पन्न कर सकती हैं जो वास्तविक प्रतीत होते हैं किंतु वास्तव में कृत्रिम रूप से निर्मित होते हैं। इसलिए रामायण की मायावी घटनाओं को आधुनिक डिजिटल भ्रम तकनीकों के प्रतीकात्मक पूर्वरूप के रूप में देखा जा सकता है। दिव्य अस्त्र-शस्त्र और स्मार्ट हथियार रामायण में ब्रह्मास्त्र, अग्निबाण तथा अन्य दिव्य अस्त्रों का वर्णन मिलता है। इन अस्त्रों की विशेषता यह थी कि वे विशिष्ट लक्ष्य पर प्रहार करने में सक्षम थे। आधुनिक युग में विकसित स्मार्ट मिसाइलें, गाइडेड वेपन सिस्टम तथा लक्ष्य-निर्धारित हथियार इसी प्रकार की कार्यप्रणाली का अनुसरण करते हैं। यद्यपि इन दोनों के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना संभव नहीं है, फिर भी लक्ष्य पहचान और लक्ष्य-विशिष्ट क्रिया की अवधारणा दोनों में समान रूप से दिखाई देती है।

हनुमान : एक आदर्श इंटेलिजेंट एजेंट हनुमान का लंका गमन रामायण का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग है। उन्हें सीता की खोज का विशिष्ट लक्ष्य दिया गया था। उन्होंने परिस्थितियों का विश्लेषण किया, उचित मार्ग चुना, विभिन्न बाधाओं का समाधान किया तथा सफलतापूर्वक सूचना एकत्र करके वापस लौटे। कृत्रिम बुद्धिमत्ता में 'इंटेलिजेंट एजेंट' ऐसी प्रणाली को कहा जाता है जो अपने परिवेश से सूचना प्राप्त करती है, उसका विश्लेषण करती है तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु निर्णय लेती है। इस दृष्टि से हनुमान का चरित्र एक आदर्श बुद्धिमान एजेंट की विशेषताओं का प्रतीक माना जा सकता है। संजीवनी प्रसंग और डेटा-सर्च की अवधारणा लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान को संजीवनी बूटी लाने का दायित्व सौंपा गया। उपयुक्त जड़ी-बूटी की पहचान न होने के कारण वे संपूर्ण पर्वत ही उठा लाते हैं। यह प्रसंग आधुनिक डेटा खोज और सूचना पुनर्प्राप्ति की समस्या से तुलनीय प्रतीत होता है। जब आवश्यक सूचना की सटीक पहचान कठिन हो जाती है, तब व्यापक डेटा-संग्रह की रणनीति अपनाई जाती है। साहित्यिक स्तर पर यह समस्या समाधान की एक प्रभावी प्रक्रिया का उदाहरण है। विभीषण की सलाह और पूर्वानुमान विश्लेषण विभीषण ने अनेक अवसरों पर रावण को चेतावनी दी कि सीता हरण का परिणाम विनाशकारी होगा। यह चेतावनी घटनाओं के तार्किक विश्लेषण पर आधारित थी। आधुनिक एआई में भविष्यसूचक विश्लेषण उपलब्ध आंकड़ों का विश्लेषण करके संभावित परिणामों का अनुमान लगाता है। विभीषण का दृष्टिकोण इसी प्रकार की पूर्वानुमानात्मक बुद्धि का प्रतीक माना जा सकता है। रावण का व्यक्तित्व और

सुपर इंटेलिजेंस की अवधारणा रामायण में रावण को महान विद्वान, वेदज्ञ, रणनीतिकार तथा बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया गया है। उसकी बौद्धिक क्षमता असाधारण थी, किंतु नैतिक संतुलन के अभाव ने उसके पतन का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक एआई विमर्श में सुपर इंटेलिजेंस की चर्चा की जाती है। यह अवधारणा बताती है कि अत्यधिक बुद्धि यदि नैतिक नियंत्रण से मुक्त हो जाए तो वह विनाशकारी परिणाम उत्पन्न कर सकती है। रावण का चरित्र इसी सत्य का साहित्यिक उदाहरण प्रस्तुत करता है। साहित्य, कल्पना और विज्ञान का अंतर्सम्बन्ध साहित्य सदैव मानव की कल्पनाशक्ति का विस्तार करता है। अनेक वैज्ञानिक आविष्कार पहले कल्पना और साहित्य में जन्म लेते हैं, बाद में विज्ञान उन्हें वास्तविक रूप प्रदान करता है। जूल्स वर्न के उपन्यासों में वर्णित पनडुब्बियाँ तथा अंतरिक्ष यात्राएँ इसका उदाहरण हैं। इसी प्रकार रामायण और रामचरितमानस में वर्णित अनेक घटनाएँ ऐसी कल्पनात्मक संभावनाओं को व्यक्त करती हैं जो आधुनिक तकनीकी विकास के संदर्भ में नई व्याख्याओं को जन्म देती हैं। यह आवश्यक नहीं कि वे वास्तविक वैज्ञानिक उपकरण रहे हों, किंतु वे मानव बुद्धि की संभावनाओं का परिचय अवश्य देती हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रामायण और रामचरितमानस में वर्णित अनेक घटनाएँ आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणाओं के साथ प्रतीकात्मक एवं वैचारिक समानता रखती हैं। पुष्पक विमान स्वचालित परिवहन प्रणाली, मायावी शक्तियाँ आभासी वास्तविकता, दिव्य अस्त्र लक्ष्य-निर्देशित हथियार, हनुमान का कार्य बुद्धिमान एजेंट तथा विभीषण की चेतावनी पूर्वानुमान विश्लेषण की अवधारणाओं से तुलनीय प्रतीत होती हैं। फिर भी यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इन ग्रंथों में प्रत्यक्ष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता का वर्णन नहीं मिलता। इन घटनाओं को आधुनिक तकनीकी अवधारणाओं के साथ जोड़कर देखना एक साहित्यिक, दार्शनिक और तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया है। इन ग्रंथों का महत्व इस बात में निहित है कि वे मानव की कल्पनाशक्ति, जिज्ञासा, समस्या समाधान क्षमता तथा बौद्धिक चेतना को प्रेरित करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि रामायण एवं रामचरितमानस आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रत्यक्ष स्रोत नहीं हैं, किन्तु उनमें निहित अनेक विचार और प्रतीक मानव की उस रचनात्मक बुद्धि को अभिव्यक्त करते हैं जिसने आगे चलकर विज्ञान और तकनीक के विकास की दिशा में प्रेरक भूमिका निभाई।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महर्षि वाल्मीकि। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण। गीता प्रेस, गोरखपुर, 20211
2. गोस्वामी तुलसीदास। श्रीरामचरितमानस। गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. गौतम, एस.पी. श्री रामचरितमानस में अध्यात्म एवं विज्ञान। मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2024।
4. गौतम, एस.पी. श्रीमद्भागवत में विज्ञान। मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 20251
5. गौतम, एस.पी. श्री रामचरितमानस की वैज्ञानिक टीका। कौशल पब्लिकेशन, 2014।
6. शर्मा, रमेश। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और साहित्यिक रचनात्मकता। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 20231
7. शर्मा, विष्णुदत्त। रामचरितमानस के वैज्ञानिक तत्व। शोध प्रशासन अकादमी, गाजियाबाद, 19981
8. गुप्ता, अंजली। डिजिटल युग में हिन्दी साहित्य। वाणी प्रकाशन, मुंबई, 2022।
9. मिश्र, रामदरश। हिन्दी साहित्य का नया परिदृश्य। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 20051
10. शर्मा, रूबल रानी। “कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में साहित्य, समाज तथा संस्कृति भविष्य के अवसर एवं चुनौतियाँ।“ अपनी माटी, 2023

◀◀ ▶▶

अनुवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप और रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद–परम्पराः एक आलोचनात्मक विमर्श

डॉ. रीना*

सार

शोध-पत्र अनुवाद के सिद्धांत और हिंदी साहित्य के रीतिकाल में विकसित अनुवाद परंपरा का समग्र और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। अनुवाद केवल एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दों का रूपांतरण नहीं है। यह अर्थ, संस्कृति, ज्ञान और साहित्यिक परंपराओं के अंतरण की एक रीति है। भारतीय परंपरा में 'अनुवाद' की अवधारणा वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक भाषाई दृष्टियों तक निरंतर विकसित होती रही है। इस अध्ययन में 'अनुवाद' शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, स्वरूप और प्रकृति का विवेचन करते हुए उसकी भाषिक प्रक्रिया, भाषिक निष्पत्ति और स्रोत-पाठ तथा लक्ष्य-पाठ के बीच समतुल्यता स्थापित करने वाली सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही, नाइडा, कैटफोर्ड, हैलिडे, डी. पी. पटनायक, भोलानाथ तिवारी और डॉ. सुरेश कुमार जैसे प्रमुख विद्वानों के अनुवाद सिद्धांतों का तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन भी किया गया है। शोध-पत्र का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद परंपरा का ऐतिहासिक और साहित्यिक मूल्यांकन है। रीतिकालीन कवियों और आचार्यों ने संस्कृत के काव्य, महाकाव्य, काव्यशास्त्र, नीति साहित्य और धार्मिक ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद करके भारतीय साहित्यिक धरोहर के संरक्षण, संवर्धन और पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। महाराज जसवंत सिंह, कुलपति मिश्र, सूरति मिश्र, पद्माकर, रसिक गोविन्द तथा अन्य रीतिकालीन विद्वानों के अनुवाद कार्य का विश्लेषण यह बताता है कि रीतिकाल का अनुवाद केवल भाषिक परिवर्तनों तक सीमित नहीं था, अपितु इसमें साहित्यिक और सांस्कृतिक मूल्य भी समाहित थे।

अनुवाद की अवधारणा: अर्थ, व्युत्पत्ति एवं सैद्धान्तिक आधार

अनुवाद मानव सभ्यता के ज्ञान के आदान- प्रदान, सांस्कृतिक संवाद और साहित्यिक बातचीत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधन रहा है। यह विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों एवं ज्ञान परंपराओं के बीच एक सेतु का कार्य करता है, परिणामस्वरूप विचारों का विनिमय संभव हो पाया है। अनुवाद ने साहित्य, दर्शन, धर्म, विज्ञान और संस्कृति के वैश्विक प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस शोध-पत्र के संदर्भ में, अनुवाद की सैद्धांतिक अवधारणा को समझना आवश्यक है, क्योंकि रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद परंपरा का मूल्यांकन सिर्फ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता। 'अनुवाद' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'वद्' से हुई है, जिसका अर्थ है 'कहना' या 'बोलना'। इसे 'अनु' उपसर्ग और 'घञ्' प्रत्यय के साथ जोड़ा गया है। मूल रूप से, इसका अर्थ है किसी पूर्व में कथित विषय को फिर से कहना या किसी कथन का अनुसरण करते हुए उसको पुनः प्रस्तुत करना। वैदिक एवं उत्तर-वैदिक साहित्य में 'अनुवाद' का मुख्य उपयोग पुनः कथन, स्पष्टीकरण, समर्थन, या ज्ञात अर्थ की पुनर्स्थापना के संदर्भ में किया गया है। यह स्पष्ट करता है कि भारतीय चिन्तन परंपरा में अनुवाद केवल भाषाई परिवर्तन से नहीं, बल्कि अर्थ के संरक्षण और पुनर्प्रसारण से भी संबंधित रहा है। “अनुवाद मूलतः एक अर्थ-संप्रेषण की प्रक्रिया है, जिसमें स्रोत भाषा के अर्थ को लक्ष्य भाषा में यथा संभव समतुल्यता के साथ पुनः प्रस्तुत किया जाता है।”[1] आधुनिक संदर्भ में, यह अवधारणा किसी भाषा में छिपे अर्थ, भाव एवं सांस्कृतिक संकेतों को दूसरी भाषा में यथा संभव समतुल्य रूप में अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया के रूप में विकसित हुई है।

* हिन्दी साहित्य, नॉन कॉलेजिएट वुमेंस एजुकेशन बोर्ड, दिल्ली विश्वविद्यालय–110007

ईमेल आईडी–reenasingh7529@gmail.com

[1] तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद, 1972

भारतीय परंपरा में अनुवाद को एक अर्थ-केंद्रित प्रक्रिया के रूप में देखा जाता रहा है। यहाँ पर शब्दों की यांत्रिक पुनरावृत्ति से ज्यादा भाव, उद्देश्य और आशय की पुनर्रचना पर जोर दिया गया है। "अनुवाद केवल शब्दों का रूपांतरण नहीं है, बल्कि वह एक सांस्कृतिक और साहित्यिक पुनर्सृजन की प्रक्रिया है, जिसमें मूल पाठ की आत्मा को नए भाषिक रूप में पुनः स्थापित किया जाता है।"[2] संस्कृत से प्राकृत, पालि, अपभ्रंश और आगे चलकर हिन्दी सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं में ज्ञान-ग्रंथों, धार्मिक साहित्य और काव्य का रूपांतरण इस परंपरा को लगातार समृद्ध करता रहा है। इस प्रकार, भारतीय अनुवाद दृष्टि में भाषा और संस्कृति के मध्य संबंध स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। उदाहरणस्वरूप, गोस्वामी तुलसीदास द्वारा संस्कृत रामकथा परंपरा का अवधी भाषा में किया गया पुनर्सृजन 'रामचरितमानस' भारतीय अनुवाद- दृष्टि का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ अनुवाद केवल भाषिक रूपांतरण न होकर सांस्कृतिक और धार्मिक पुनर्संरचना के रूप में सामने आता है।[3] इसी प्रकार, भक्तिकाल में सूरदास द्वारा 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध का ब्रजभाषा में किया गया भावानुवाद यह दर्शाता है कि भारतीय परंपरा में अनुवाद मूल ग्रंथ की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए उसे लोकभाषा और जनसंवेदना के स्तर पर पुनः प्रस्तुत करने की प्रक्रिया है।[4] भाषा- विज्ञान के दृष्टिकोण से अनुवाद के तीन प्रमुख प्रकार हैं, समभाषिक (Intralingual), अन्यभाषिक (Interlingual) और संकेतांतरण (Intersemiotic) अनुवाद। समभाषिक अनुवाद में एक ही भाषा के भीतर अर्थ को पुनः प्रस्तुत किया जाता है। दूसरी ओर, अन्यभाषिक अनुवाद में किसी एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में परिवर्तित किया जाता है। संकेतांतरण में भाषाई संकेतों को अन्य संकेत प्रणालियों, जैसे कि चित्र, नाटक, या दृश्य माध्यमों में बदला जाता है। हालांकि इन तीनों प्रकारों का अपना महत्व है, साहित्यिक अध्ययन के संदर्भ में अन्यभाषिक अनुवाद को विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसका श्रेत्र अधिक विस्तृत है। आधुनिक अनुवाद- चिंतन में अनुवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले कई विद्वान हैं। यूजीन नाइडा ने 'निकटतम स्वाभाविक समतुल्यता' (Dynamic Equivalence) का सिद्धांत पेश किया, जिसमें उन्होंने अर्थ को शैली की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण माना। वहीं, जे. सी. कैटफ़ोर्ड ने अनुवाद को एक भाषा के पाठ्य-सामग्री को दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ्य-सामग्री से बदलने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया। एम. ए. के. हैलिडे का दृष्टिकोण यह है कि अनुवाद स्रोत और लक्ष्य पाठ के बीच एक कार्यात्मक संबंध होता है। हिन्दी के विद्वानों में डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद को निकटतम, समतुल्य और सहज पहचान देने वाली प्रक्रिया बताया है। स्पष्ट है कि अनुवाद का सिद्धांत केवल भाषायी परिवर्तन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह अर्थ, संस्कृति, परंपरा और साहित्यिक चेतना के अंतर्संबंधों को व्यक्त करने वाली एक रचनात्मक प्रक्रिया है। इसी सिद्धांत के आधार पर रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद परंपरा का अध्ययन अधिक वस्तुनिष्ठ और आलोचनात्मक दृष्टिकोण से किया जा सकता है। वास्तव में, रीतिकालीन अनुवाद कार्य भारतीय साहित्यिक परंपरा के संरक्षण, पुनर्निर्माण और सांस्कृतिक निरंतरता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसकी उचित व्याख्या अनुवाद के सैद्धांतिक आधार समझे बिना नहीं हो सकती।

अनुवाद का स्वरूप एवं भारतीय अनुवाद-परम्परा

अनुवाद का सिद्धांत केवल परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है; यह ज्ञान, संस्कृति, साहित्य और सभ्यता के स्थायी संचार की सृजनात्मक प्रक्रिया भी है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, भारतीय परंपरा में अनुवाद का मुख्य आधार 'अर्थ' का संरक्षण और उसका पुनर्प्रस्तुतीकरण है। यही सिद्धांत भारतीय अनुवाद परंपरा की नींव है, जिसके परिणामस्वरूप समय- समय पर ज्ञान, दर्शन, धर्म और साहित्य का निरंतर अनुवाद एवं पुनर्सृजन होता रहा है। इसीलिए, भारतीय अनुवाद परंपरा और विशेष रूप से समझने के लिए अनुवाद के स्वरूप की समझ

---

[2] कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986

[3] तुलसीदास, *रामचरितमानस*। नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी, 2016

[4] सूरदास, *सूरसागर*। नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी, 2010

आवश्यक है। "अनुवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मूल अर्थ को लक्ष्य भाषा में यथासंभव समतुल्यता के साथ पुनर्सृजित किया जाता है।"[5] प्रक्रिया के दृष्टिकोण से, अनुवाद स्रोत भाषा के अर्थ, भावनाएं, शैली और सांस्कृतिक संकेतों को समझकर उन्हें लक्ष्य भाषा में परिवर्तित करता है। परिणाम के स्तर पर, अनूदित पाठ स्वतंत्र साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उभरता है, जो मूल रचना के अर्थ से जुड़े होते हुए भी लक्ष्य भाषा की विशेषताओं के अनुसार अपना अद्वितीय स्वरूप ग्रहण करता है। समतुल्यता (Equivalence) अनुवाद का एक महत्वपूर्ण तत्व है। भारतीय अनुवाद परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। वैदिक काल से ही ज्ञान के संरक्षण और प्रसार के लिए मौखिक पुनरावृत्ति और व्याख्या की परंपरा विकसित रही है, जिसने अनुवाद की नींव रखी। संस्कृत ज्ञान-साहित्य के विस्तार के साथ, उसकी अवधारणाओं का पालि, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी आम बोलचाल की भाषाओं में रूपांतरण शुरू हुआ। यह रूपांतरण केवल भाषाई सुविधा के लिए नहीं था, बल्कि इसे समाज के व्यापक हिस्से तक ज्ञान, धर्म, और दर्शन पहुँचाने के साधन के रूप में देखा गया। इस परिप्रेक्ष्य में, भारतीय अनुवाद परंपरा का मुख्य उद्देश्य सांस्कृतिक संवाद को स्थापित करना था। वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत और पुराणों की व्याख्यात्मक परंपरा ने भारतीय अनुवाद की सोच को सतत आगे बढ़ाया। संस्कृत से पालि और प्राकृत में बौद्ध और जैन साहित्य का रूपांतरण भारतीय भाषाओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। इसी तरह, अपभ्रंश साहित्य ने संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच सार्थक सेतु का कार्य किया। इन सभी भाषाई रूपांतरणों में मूल ग्रंथों के विचार, दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखा गया, जबकि उनकी अभिव्यक्ति आमजन की भाषा में की गई। "भारतीय अनुवाद परंपरा में मूलतः अर्थ और संस्कृति का संरक्षण प्रमुख रहा है, न कि शब्दों का यांत्रिक रूपांतरण।"[6] भक्तिकाल भारतीय अनुवाद परंपरा के विकास का महत्वपूर्ण चरण सिद्ध हुआ। तत्कालीन समय में, संस्कृत के धार्मिक, दार्शनिक, और काव्य ग्रंथों का हिंदी और अन्य स्थानीय भाषाओं में व्यापक रूप से रूपांतरण किया गया। सूरदास द्वारा श्रीमद्भागवत का भावानुवाद, नंददास की रासपंचाध्यायी, तुलसीदास की रामचरितमानस में संस्कृत परंपरा का पुनर्निर्माण तथा दारा शिकोह द्वारा उपनिषदों का फारसी अनुवाद इस परंपरा के प्रमुख उदाहरण हैं। इन अनुवादों का उद्देश्य केवल ग्रंथों का अनुवाद करना नहीं था, अपितु इसे लोक जीवन से जोड़ना, सांस्कृतिक संवाद स्थापित करना और भारतीय ज्ञान की धारा को सशक्त करना भी था। भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण में अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। यदि विभिन्न युगों में संस्कृत ग्रंथों का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद नहीं हुआ होता, तो भारतीय दर्शन, काव्यशास्त्र, धर्म और नीति-साहित्य का विशाल खजाना वर्ग विशेष तक ही सीमित रह जाता। अनुवाद ने केवल ज्ञान को संरक्षित नहीं किया, बल्कि प्रत्येक युग की भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार उसका पुनर्निर्माण भी किया। "अनुवाद केवल भाषा परिवर्तन नहीं बल्कि सांस्कृतिक पुनर्निर्माण और ज्ञान के पुनर्सृजन की प्रक्रिया है।"[7] यह स्पष्ट है कि अनुवाद के सिद्धांत और भारतीय अनुवाद परंपरा एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। प्रस्तावित अनुवाद के सैद्धांतिक विचार भारतीय इतिहास में व्यावहारिक रूप में उपस्थित होते हैं। यह ऐतिहासिक परंपरा रीतिकाल के दौरान अधिक संरचित और साहित्यिक रूप ग्रहण करती है, जब संस्कृत के काव्य, काव्यशास्त्र, नीति और महाकाव्यों का हिंदी में व्यापक अनुवाद किया गया। इस प्रकार, रीतिकाल का साहित्यिक अनुवाद परंपरा भारतीय अनुवाद विमर्श की स्वाभाविक विशेषता के रूप में उभरकर सामने आता है।

रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद-परम्परा: स्वरूप, प्रवृत्तियाँ एवं योगदान

पूर्ववर्ती विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अनुवाद परंपरा का मूल अर्थ प्रेषण, सांस्कृतिक संरक्षण और ज्ञान के पुनर्निर्माण में निहित है। यही सैद्धांतिक आधार रीतिकाल में और अधिक संगठित तथा

---

[5] तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद, 1972

[6] कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986

[7] सिंह, नामवर, *आलोचना और विचार*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

साहित्यिक रूप में विकसित हुआ। "रीतिकाल में साहित्य का मुख्य उद्देश्य अलंकारिक सौंदर्य और शास्त्रीय परंपरा का संरक्षण था, जिसमें संस्कृत काव्य परंपरा का हिन्दी रूपांतरण प्रमुख प्रवृत्ति रही।"[8] जिसमें काव्यशास्त्र, अलंकारिक सौंदर्य, रस सिद्धांत, और दरबारी संस्कृति का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। "रीतिकालीन साहित्य संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा का हिन्दी में सृजनात्मक पुनर्संस्कार है।"[9] रीतिकाल के साहित्यिक अनुवाद की विशेषता यह थी कि प्रमुखता से संस्कृत के काव्य, काव्यशास्त्र, नीति, महाकाव्य और धार्मिक ग्रंथों का हिंदी में रूपांतर किया गया। "अनुवाद केवल भाषिक परिवर्तन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है, जिसमें परंपरा नई भाषा में पुनः जीवित होती है।"[10] इन अनुवादों का मुख्य उद्देश्य केवल शब्दों का शाब्दिक अनुवाद मात्र करना नहीं था, बल्कि मूल रचनाओं के भाव, काव्य की सुंदरता, सांस्कृतिक संदर्भों और साहित्यिक प्रभावों को लक्षित भाषा में जीवंतता से प्रस्तुत करना भी था। परिणामतः रीतिकालीन काव्यों के अनुवाद में भावानुवाद, रूपांतरण और व्याख्यात्मक प्रस्तुति की प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है। यह प्रवृत्ति आधुनिक अनुवाद सिद्धांतों में वर्णित 'अर्थ-समतुल्यता' और 'कार्य' जैसे विचारों के सामान है। इस युग में कई कवि-आचार्यों ने संस्कृत की सांस्कृतिक परम्परा को हिंदी में समृद्ध करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

मूल- दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोडधिश्रित्य संयावमनुद्धास्यापरा ययुः।।
परिवेषभन्त्यस्तद्वित्वा पाययन्त्यः शिशून पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिद श्रन्त्ययोऽपास्य भोजनम्।।[11]

अनुवाद- दुहत दूध इक डगरी भामिनि ।
धेनु दुहावति तैं अभिरामनि ।।
पय औंटत तें एक नवेली।
उहि दौरी मनु कंचन बेली।।
इक तजि करत रसोई भाजी।
सुन्दरि नंदनंदन हित रार्जी ।।
अरू इक बंधु परोसति थारी।
चली अंचकें उठि नव नारी।।[12]

महाराज जसवंत सिंह ने 'भाषा-भूषण' के जरिए काव्यशास्त्र की परंपरा को आगे बढ़ाया। कुलपति मिश्र ने 'रसऱहस्य' में काव्यप्रकाश के सिद्धांतों को नया रूप दिया। सूरति मिश्र ने 'बेताल पच्चीसी' का ब्रजभाषा में अनुवाद किया, जबकि पद्माकर भट्ट ने 'हितोपदेश' का भाषानुवाद कर नीति साहित्य को आम लोगों के लिए सुलभ बनाया। रसिक गोविंद, श्रीहर्ष, गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव जैसे विद्वानों ने संस्कृत महाकाव्यों और शास्त्रीय ग्रंथों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रीतिकालीन अनुवाद परंपरा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इसने संस्कृत और हिन्दी के मध्य एक सशक्त साहित्यिक सेतु का निर्माण किया। काव्य, काव्यशास्त्र, नीति, महाकाव्य और धार्मिक साहित्य के रूपांतरण की प्रक्रिया के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण हुआ और हिन्दी साहित्य को समृद्ध वैचारिक आधार मिला। इसके अतिरिक्त, इस परंपरा ने यह सिद्ध किया कि अनुवाद केवल भाषाई कौशल नहीं है, अपितु यह सांस्कृतिक पुनर्सृजन और साहित्यिक पुनर्व्याख्या की गहरी प्रक्रिया भी है। हालाँकि, रीतिकालीन अनुवादों की कुछ सीमाएँ भी थीं। इस प्रकार, रीतिकालीन साहित्यिक

[8] शुक्ल, रामचन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 2009
[9] सिंह, नामवर, *आलोचना और विचार*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2005
[10] तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान*, इलाहाबाद: किताब महल, 1972
[11] श्रीमद्भागवत महापुराण, (द्वितीय भाग), महर्षि वेदव्यास कृत, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 300-301
[12] सोमनाथ ग्रंथावली (प्रथम भाग), पृ. 227

अनुवाद-परंपरा भारतीय अनुवाद विमर्श की एक महत्वपूर्ण क्रम के रूप में प्रस्तुत होती है, जिसमें अनुवाद के सैद्धांतिक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

रीतिकालीन अनुवाद-परम्परा का आलोचनात्मक मूल्यांकन एवं समकालीन प्रासंगिकता

रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद-परंपरा का एक आलोचनात्मक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि यह भारतीय अनुवाद विमर्श की एक महत्वपूर्ण ऐतहासिकता का वैचारिक क्रम रहा है। यह पूर्ववर्ती सैद्धांतिक आधारों को साहित्यिक और व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में विस्तारित करती है। रीतिकालीन अनुवाद को रचनात्मक और सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में पुनः मूल्यांकित किया जा सकता है। यह परंपरा केवल भाषाई परिवर्तन तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसके गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ भी हैं। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से रीतिकालीन अनुवाद का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में अनुवाद के औपचारिक सिद्धांत अस्तित्व में नहीं थे, फिर भी व्यवहार में अर्थ-समता, भावानुवाद और सांस्कृतिक अनुकूलन जैसे आधुनिक अनुवाद सिद्धांतों के तत्व स्पष्ट रूप से पाए जाते हैं।

मूल- तद् विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः।
गृहीत्वा पादयोः शत्रु पातयामास भूतले ।।
एकं पादं पदा क्रम्य दोर्यामन्यं प्रगृह्य सः।
गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः।।[13]
अनुवाद- सो भीम महा बलवंत अंग।
बर जंग जुटैयनि मैं सुटंग। संज्ञा गुविंद की चित्त जांनि।
गहि रिपु के जुग पग क्रुद्ध ठांनि।
दीनों पटकि वसुम मद्धि।
पुनि हियें महा उत्साह लद्धि।
पग सौं इक ताकौ दाबि पाइ।
गहि कर सौं पग दूजौ छुहाइ।
गुद तें करि डारयौ चीरि दोइ।
गज ज्यों द्रुम सा खै क्रुद्ध मोइ।[14]

"अनुवाद केवल भाषा परिवर्तन नहीं अपितु अर्थ के पुनर्सृजन की प्रक्रिया है।"[15] यह प्रवृत्ति इस तथ्य को उजागर करती है कि रीतिकालीन अनुवादक मात्र भाषान्तरणकर्ता ही नहीं थे, अपितु वे मूल ग्रंथों के पुनर्निर्माता भी थे। "अनुवादक मूलतः पुनर्सर्जक होता है, जो स्रोत पाठ को नई सांस्कृतिक चेतना में पुनः स्थापित करता है।"[16] इसके साथ ही, यह स्वीकार करना भी आवश्यक है कि दरबारी संस्कृति, संस्कृत-प्रधान दृष्टिकोण और सीमित सामाजिक विस्तार जैसी कुछ सीमाएँ उनके काव्य में दृष्टिगत होती है। भारतीय अनुवाद-विमर्श में रीतिकाल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस अवधि में अनुवाद को साहित्यिक पुनर्निर्माण और सांस्कृतिक संवाद के माध्यम के रूप में स्थापित किया गया। "भारतीय साहित्य में अनुवाद का उद्देश्य केवल भाषांतरण नहीं बल्कि सांस्कृतिक संवाद स्थापित करना रहा है।"[17] इस परंपरा ने संस्कृत और हिन्दी के बीच एक दृढ़ संबंध स्थापित किया, जिससे भारतीय काव्यशास्त्रीय धारणाएँ, रस-सिद्धांत और नीति-दर्शन हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त कर सके। यह योगदान भारतीय साहित्य के इतिहास में अनुवाद को स्वतंत्र वैचारिक क्षेत्र के रूप में समझने की दिशा में आधार प्रदान करता है। आधुनिक अनुवाद अध्ययन के संदर्भ में रीतिकालीन परंपरा की प्रासंगिकता और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। आज के वैश्विक और बहुभाषिक समाज में, अनुवाद केवल भाषाई प्रक्रिया नहीं रह गया है, बल्कि यह सांस्कृतिक मध्यस्थता और अर्थ निर्माण की प्रक्रिया बन गया है। "आधुनिक अनुवाद

[13] श्रीमद्भागवत महापुराण, (द्वितीय भाग), महर्षि वेदव्यास कृत, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ.579

[14] सोमनाथ ग्रंथावली (प्रथम भाग), पृ. 688-689

[15] तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद, 1972

[16] कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986

[17] सिंह, नामवर, *आलोचना और विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

सिद्धांत यह मानता है कि अनुवाद एक सांस्कृतिक मध्यस्थता की प्रक्रिया है।"[18] इस परिप्रेक्ष्य में, रीतिकालीन अनुवाद यह दर्शाता है कि सबसे सफल अनुवाद वही होता है जो मूल पाठ की आत्मा को संरक्षित रखते हुए लक्ष्य भाषा में एक नया साहित्यिक जीवन उत्पन्न करे। यह दृष्टिकोण आधुनिक अनुवाद सिद्धांतों जैसे समतुल्यता, कार्यात्मकता और सांस्कृतिक अनुवाद के सिद्धांतों से सामंजस्य स्थापित करता है। निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन अनुवाद परंपरा भारतीय अनुवाद के सिद्धांतों की ऐतिहासिक पहचान है, जो सिद्धांत और व्यवहार के बीच संतुलन को दर्शाती है। यह परंपरा अनुवाद के सैद्धांतिक रूपों को व्यावहारिक रूप में गढ़ते हुए भारतीय साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना की निरंतरता को बनाए रखती है। इसलिए, रीतिकालीन साहित्यिक अनुवाद का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह आधुनिक अनुवाद के विमर्श के विकास के लिए भी अत्यंत आवश्यक और सामयिक है।

संदर्भ सूची

1. कुमार, सुरेश, (1986), *अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा*, राजकमल प्रकाशन
2. कुलपति मिश्र, (1999), *रस-रहस्य / काव्य-प्रकाश व्याख्या*, भारतीय विद्या भवन
3. केशवदास, (2005), *रामचन्द्रिका*, नागरी प्रचारिणी सभा,
4. तिवारी, भोलानाथ, (1972), *अनुवाद विज्ञान*, किताब महल
5. तुलसीदास, (2016), *रामचरितमानस*, साहित्य अकादेमी
6. त्रिपाठी, राममूर्ति, (1998), *हिन्दी साहित्य और परंपरा*, वाणी प्रकाशन
7. दारा शिकोह, (1997), *उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद*, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास
8. नंददास, (2008), *रासपंचाध्यायी*, चौखम्बा प्रकाशन
9. पट्टनायक, डी. पी. (1968), *भाषाविज्ञान और अनुवाद*, एलाईड पब्लिशर्स
10. पद्माकर भट्ट, (2003), *हितोपदेश (ब्रजभाषा रूपांतरण)*, साहित्य प्रकाशन
11. पाणिनि, (अप्रकाशित/पारंपरिक ग्रंथ), *अष्टाध्यायी*
12. बिहारी, (2007), *बिहारी सतसई*, साहित्य अकादेमी
13. महाराज जसवंत सिंह, (1995), *भाषा-भूषण*, राजस्थानी ग्रंथागार
14. मिश्र, शिवदान सिंह, (1980), *हिन्दी आलोचना की भूमिका*, लोकभारती प्रकाशन
15. वासु, श्रीषचंद्र, (1930), *अष्टाध्यायी (अंग्रेज़ी टीका)*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता प्रेस
16. शर्मा, रामचन्द्र, (1975), *रीतिकालीन साहित्य का अध्ययन*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
17. शर्मा, रामस्वरूप, (1990), *अनुवाद के सिद्धांत और समस्याएँ*, वाणी प्रकाशन
18. शुक्ल, रामचन्द्र, (2009), *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, नागरी प्रचारिणी सभा
19. श्रीमद्भागवत महापुराण, (द्वितीय भाग), महर्षि वेदव्यास कृत, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 300-301
20. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ एवं गोस्वामी, कृष्णकुमार, (1985), *अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ*, लोकभारती प्रकाशन
21. सिंह, नामवर, (2005), *आलोचना और विचार*, राजकमल प्रकाशन
22. सूरति मिश्र, (2001), *बेताल पच्चीसी (ब्रज अनुवाद)*, चौखम्बा प्रकाशन
23. सूरदास, (2010), *सूरसागर*, साहित्य अकादेमी
24. सोमनाथ ग्रंथावली (प्रथम भाग), संवत् 2028

मूल-

तद् विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः।
गृहीत्वा पादयोः शत्रु पातयामास भूतले ।।
एकं पादं पदा क्रम्य दोर्यामन्यं प्रगृह्य सः।
गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः।।

[18] श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, *अनुवाद अध्ययन और समस्याएँ*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985

अनुवाद-

सो भीम महा बलवंत अंग।
बर जंग जुटैयनि मैं सुटंग। संज्ञा गुविंद की चित्त जांनि।
गहि रिपु के जुग पग क्रुद्ध ठांनि।
दीनों पटकि वसुम मद्धि।
पुनि हियें महा उत्साह लद्धि।
पग सौं इक ताकौ दाबि पाइ।
गहि कर सौं पग दूजौ छुहाइ।
गुद तें करि डारयौ चीरि दोइ।
गज ज्यों द्रुम सा खै क्रुद्ध मोइ।

◀◀ ▶▶

सिंधु घाटी सभ्यता का नगर नियोजनः मिथक या अभियांत्रिकी का अद्भुत चमत्कार

डॉ. विजय कुमार पाण्डेय*
डॉ. चन्द्रशेखर**

शोध सारांश:-

प्रस्तुत शोध-पत्र सिंधु घाटी सभ्यता के नगर नियोजन का अध्ययन करता है तथा यह जांचने का प्रयास करता है कि क्या इसकी आधारभूत संरचनाएँ वास्तव में प्राचीन अभियांत्रिकी की एक उत्कृष्ट उपलब्धि थीं या आधुनिक विमर्श में उनकी उन्नतता को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया है। पुरातात्विक साक्ष्यों और मेसोपोटामिया तथा मिस्र की सभ्यताओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर यह अध्ययन सिंधु घाटी सभ्यता की मानकीकृत नगर संरचना, जल निकासी प्रणाली, जल प्रबंधन, निर्माण सामग्री और सार्वजनिक सुविधाओं का मूल्यांकन करता है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और धोलावीरा जैसे नगर उन्नत स्तर के नियोजन को प्रदर्शित करते हैं, जिनमें जालीनुमा सड़कों की व्यवस्था, केंद्रीकृत जल-मल निकासी प्रणाली तथा 1:2:4 के समानुपातिक मानक का पालन करने वाली ईंट निर्माण प्रणाली शामिल है। ये विशेषताएँ नगर विकास के प्रति एक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और पर्यावरण के अनुकूल दृष्टिकोण को दर्शाती हैं।

यह शोध-पत्र सिंधु घाटी सभ्यता की नागरिक-केंद्रित नगर व्यवस्था की तुलना मिस्र और सुमेर की विशाल स्मारक-केंद्रित संरचनाओं से करता है। इसमें यह उल्लेख किया गया है कि सिंधु सभ्यता में राजमहलों, भव्य मंदिरों और अब तक पढ़े न जा सके लिपिबद्ध ग्रंथों का अभाव मिलता है। यही कमी विद्वानों के बीच बहस का विषय रही है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह एक विकेंद्रीकृत और तकनीकी दक्ष समाज था, जबकि कुछ अन्य यह प्रश्न उठाते हैं कि "उन्नत" शब्द का प्रयोग कहीं आधुनिक दृष्टिकोण का अतीत पर आरोपण तो नहीं है। इस शोध के निष्कर्ष प्राचीन अभियांत्रिकी में दक्षिण एशिया के योगदान को पुनः मूल्यांकित करने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं तथा पुरातत्व, जल विज्ञान और पदार्थ विज्ञान जैसे विभिन्न विषयों के समन्वित अध्ययन को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे विश्व की सबसे प्राचीन नगरीय सभ्यताओं में से एक सिंधु घाटी सभ्यता की जटिलताओं को और बेहतर ढंग से समझा जा सके।

मुख्य शब्द:-सिंधु घाटी स भ्यता, नगर नियोजन, प्राचीन अभियांत्रिकी, मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, स्वच्छता प्रणाली, मानकीकृत ईंटें, नागरिक वास्तुकला, पुरातात्विक नगरवाद, तुलनात्मक सभ्यताएँ, दक्षिण एशियाई इतिहास।

भूमिका:-

पुरातत्वीय खोजों में कुछ ही ऐसी खोजें हुई हैं, जिन्होंने इतिहासकारों, वास्तुकारों और अभियंताओं की कल्पना को उतनी गहराई से प्रभावित किया है, जितना कि प्राचीन नगरों हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खोज ने किया। हजारों वर्षों के मौन में छिपे ये सुव्यवस्थित नगर केंद्र जो वर्तमान पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत के क्षेत्रों की रेत से पुनः प्रकाश में आए आज भी आश्चर्य और जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। इन स्थलों की विशिष्टता केवल उनकी प्राचीनता में नहीं है, बल्कि इनके द्वारा प्रदर्शित अद्भुत स्तर के नगरीय विकास में निहित है। सममितीय सड़क व्यवस्था, मानकीकृत पकी हुई ईंटों से निर्मित वास्तुकला, उन्नत जल निकासी प्रणाली तथा केंद्रीकृत नागरिक नियोजन के प्रमाण लगभग 2600 ई. पू. में ही विकसित हो चुके थे। जैसे-जैसे नए पुरातात्विक प्रमाण सामने आ रहे हैं, सिंधु अध्ययन के क्षेत्र में विद्वानों का ध्यान एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित हो रहा है, क्या सिंधु घाटी सभ्यता का नगर नियोजन वास्तव में प्राचीन विश्व के मानकों के अनुसार अत्यंत उन्नत था, या आधुनिक व्याख्याओं में इसकी उपलब्धियों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया है? यह शोध सिंधु घाटी सभ्यता की नगरीय प्रणालियों से संबंधित पुरातात्विक खोजों और विद्वानों की व्याख्याओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए इस मूल प्रश्न का समाधान करने का प्रयास करता है। यद्यपि सामान्य जनमानस में सिंधु सभ्यता के नगरों को अक्सर आदर्श और अद्भुत नगरों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन उत्खनन संबंधी आंकड़ों और तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित वैज्ञानिक मूल्यांकन एक अधिक जटिल चित्र प्रस्तुत करता है। इन नगरों में निश्चित रूप से दूरदर्शी नियोजन और अभियांत्रिकी कौशल दिखाई देता है, किंतु उनकी प्रशासनिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना और प्रतीकात्मक महत्व अभी भी विद्वानों के बीच चर्चा का विषय हैं। इसका मुख्य कारण सिंधु लिपि का अभी तक अपठित होना तथा विशाल राजमहलों या भव्य मंदिरों जैसे स्मारकीय निर्माणों का अभाव है।

* पूर्व शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगडी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

** असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट), प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगडी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस शोध-पत्र का केंद्रीय तर्क यह है कि सिंधु घाटी सभ्यता का नगर नियोजन किसी मिथक या अतिशयोक्ति का परिणाम नहीं था, बल्कि यह नागरिक वास्तु-योजना और पर्यावरणीय अनुकूलन का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह इस दृष्टिकोण को समर्थन देता है कि इन प्राचीन लोगों के पास ऐसा अभियांत्रिकी ज्ञान और कौशल था, जो बाद की कई सभ्यताओं में भी दुर्लभ दिखाई देता है। मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यताओं की तरह शक्तिशाली शासकों या धार्मिक तंत्र पर आधारित व्यवस्था के स्थान पर सिंधु सभ्यता में संभवतः तकनीकी दक्षता पर आधारित या विकेंद्रीकृत नगरीय प्रशासन प्रणाली विकसित थी। इसका अनुमान नगरों में आधारभूत सुविधाओं के समान वितरण और नगर संरचनाओं की एकरूपता से लगाया जाता है। इस तर्क को प्रमाणित करने के लिए यह शोध विस्तृत पुरातात्विक रिपोर्टों, तुलनात्मक सभ्यता अध्ययनों तथा प्रमुख इतिहासकारों जैसे ए.एच. दानी, बी.के. थापर और जे.आर. मैकइंटोश के कार्यों पर आधारित है। दानी[1] और थापर ने इस सभ्यता के विकास और इसकी विशिष्ट नगरीय संस्कृति को समझने के लिए आधारभूत संदर्भ प्रदान किया है, जबकि फिट्जसिमन्स ने सिंधु सभ्यता के नागरिक नियोजन की पुरातात्विक व्याख्या के संबंध में प्रारंभिक किंतु महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। वहीं मैकइंटोश ने आधुनिक दृष्टिकोण के माध्यम से न केवल भौतिक अवशेषों पर ध्यान केंद्रित किया, बल्कि सिंधु सभ्यता के नगर नियोजन के स्थानिक तर्क और सामाजिक प्रभावों को भी स्पष्ट किया।[2]

क्षेत्रीय इतिहास और वैश्विक नगरीय परंपराओं, दोनों के संदर्भ में सिंधु घाटी सभ्यता का अध्ययन करते हुए यह शोध यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि उसका नगर नियोजन केवल व्यावहारिक आवश्यकता पर आधारित था या उसमें दूरदर्शी सोच भी निहित थी। साथ ही यह भी जांच करता है कि क्या मानव इतिहास में टिकाऊ नगरीय विकास के प्रारंभिक उदाहरणों में इसे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए।

ऐतिहासिक संदर्भ एवं खोज:-

सिंधु घाटी सभ्यता की 1920 के दशक में पुनः खोज ने दक्षिण एशिया के प्राचीन इतिहास की समझ में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी क्षण प्रस्तुत किया। लंबे समय तक मिस्र और मेसोपोटामिया जैसी प्रसिद्ध सभ्यताओं की छाया में रहने वाली सिंधु घाटी सभ्यता को विद्वानों के समक्ष उस समय प्रमुखता मिली, जब भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अंतर्गत वर्ष 1921 में दया राम साहनी द्वारा हड़प्पा में तथा वर्ष 1922 में आर.डी. बनर्जी द्वारा मोहनजोदड़ो में उत्खनन कार्य किया गया। इन खोजों ने केवल कुछ अलग-अलग बस्तियों को उजागर नहीं किया, बल्कि एक विशाल और अत्यंत संगठित नगरीय सभ्यता के प्रमाण प्रस्तुत किए, जो पहले अनुमानित समय से भी लगभग एक सहस्राब्दी पूर्व विकसित हो चुकी थी।

लगभग 3000 ईसा पूर्व से 1300 ईसा पूर्व तक विस्तृत यह सभ्यता अपने उत्कर्ष पर परिपक्व हड़प्पा काल (लगभग 2600–1900 ईसा पूर्व) में पहुँची। इस काल में हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल, कालीबंगा, धोलावीरा और राखीगढ़ी जैसे नगर एक विशाल क्षेत्र में फैले हुए नगरीय केंद्रों के नेटवर्क का निर्माण करते थे। कुमार और गिडवानी के अनुसार, इस सभ्यता का भौगोलिक विस्तार पश्चिम में बलूचिस्तान और पंजाब से लेकर पूर्व में गुजरात तथा यमुना के मैदानी क्षेत्रों तक था, जो दस लाख वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र में फैला हुआ था।[3] इस प्रकार यह कांस्य युग की विश्व की सबसे विशाल सभ्यताओं में से एक थी। सिंधु घाटी सभ्यता की विशेषता केवल इसका विशाल विस्तार नहीं था, बल्कि इसकी अद्भुत नगरीय समानता भी थी, जो उच्च स्तर के नागरिक समन्वय का संकेत देती है। गुलजार द्वारा बस्तियों के विस्तार और नगरीय आधारभूत संरचना पर किए गए अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इतने बड़े भौगोलिक क्षेत्र में भी वास्तु मानक, सड़क व्यवस्था और जल प्रबंधन प्रणालियाँ समान नियोजन सिद्धांतों का पालन करती थीं।[4] यह तथ्य दर्शाता है कि भव्य स्मारकों या राजकीय भवनों के अभाव के बावजूद प्रशासनिक व्यवस्था और नगरीय नीति में एक आंतरिक समन्वय मौजूद था। सिंधु घाटी सभ्यता के कालक्रम को सामान्यतः तीन प्रमुख चरणों में विभाजित किया जाता है-

1. प्रारंभिक हड़प्पा काल (लगभग 3300–2600 ईसा पूर्व)
2. परिपक्व हड़प्पा काल (लगभग 2600–1900 ईसा पूर्व)
3. उत्तर हड़प्पा काल (लगभग 1900–1300 ईसा पूर्व)

इनमें से परिपक्व हड़प्पा काल में नगरों ने वास्तुकला और नियोजन की सर्वोच्च उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। इस काल में समकोणीय सड़क व्यवस्था, मानकीकृत पकी हुई ईंटों का उपयोग, विकसित जल निकासी प्रणाली तथा मोहनजोदड़ो का प्रसिद्ध महान स्नानागार जैसी सार्वजनिक संरचनाओं का निर्माण हुआ। रमेश[5] ने उल्लेख किया है, इस सभ्यता की सबसे रोचक विशेषताओं में से एक किसी स्पष्ट केंद्रीकृत धार्मिक या राजवंशीय शासन के प्रमाणों का अभाव है। मिस्र और मेसोपोटामिया के विपरीत, यहाँ राजाओं, विशाल राजमहलों या संगठित सेनाओं के स्पष्ट पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलते। इसके स्थान पर सामाजिक समन्वय संभवतः तकनीकी दक्षता और स्थानीय नगरीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं के माध्यम से संचालित होता था, जिसका संकेत नगर नियोजन और नागरिक सुविधाओं की समानता से मिलता है।

भव्य मंदिरों या शासकों की प्रशंसा करने वाले अभिलेखों की अनुपस्थिति यह संकेत देती है कि यह सामाजिक व्यवस्था संभवतः दमनकारी राज्य शक्ति या धार्मिक प्रभुत्व के बजाय सामूहिक नागरिक प्रशासन और आर्थिक समन्वय पर आधारित थी।

इसके अतिरिक्त, सिंधु सभ्यता की अर्थव्यवस्था अत्यंत विकसित और विविधतापूर्ण थी। कृषि, हस्तशिल्प, धातुकर्म और दूरस्थ व्यापार (जिसमें मेसोपोटामिया तथा ओमान के साथ समुद्री व्यापारिक संबंध भी शामिल थे) अच्छी तरह विकसित थे। लोथल जैसे नगर महत्वपूर्ण बंदरगाह केंद्रों के रूप में कार्य करते थे, जिससे स्पष्ट होता है कि सिंधु सभ्यता केवल कृषि आधारित समाज नहीं थी, बल्कि व्यापक व्यापारिक गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से संलग्न थी। गुलजार ने भी यह बताया है कि आधारभूत संरचनाओं का विस्तार उन अधिशेष उत्पादन वाली अर्थव्यवस्थाओं के अनुरूप था, जो बड़ी जनसंख्या को बनाए रखने में सक्षम थीं। इस प्रकार, सिंधु घाटी सभ्यता का ऐतिहासिक संदर्भ एक ऐसी जटिल, विकेंद्रीकृत और अनुकूलनशील समाज व्यवस्था को प्रस्तुत करता है, जिसकी नगरीय उन्नति सामूहिक बुद्धिमत्ता और पर्यावरणीय संवेदनशीलता पर आधारित थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में इसकी खोज ने प्राचीन सभ्यताओं के संबंध में प्रचलित यूरोप-केंद्रित धारणाओं को चुनौती दी और यह प्रमाणित किया कि प्रारंभिक दक्षिण एशिया अपने समय की सबसे उन्नत नगरीय संस्कृतियों में से एक का केंद्र था।

नगरीय नियोजन की विशेषताएँ:-

सिंधु घाटी सभ्यता का नगरीय डिजाइन इसकी सबसे प्रभावशाली और विशिष्ट विशेषताओं में से एक है। अपने समकालीन अनेक सभ्यताओं से अलग, सिंधु सभ्यता ने नगर नियोजन की एक व्यापक और सुव्यवस्थित समझ का प्रदर्शन किया, जो इसके सुनियोजित नगर विन्यास, आधारभूत संरचना और मानकीकृत वास्तुकला में स्पष्ट दिखाई देती है।

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, धोलावीरा और लोथल जैसे अनेक उत्खनित स्थलों से प्राप्त प्रमाण यह दर्शाते हैं कि ये विशेषताएँ न केवल एक अत्यंत संगठित समाज को प्रतिबिंबित करती हैं, बल्कि यह भी प्रमाणित करती हैं कि उस समाज को अभियांत्रिकी, स्वच्छता व्यवस्था और नागरिक उपयोगिता की गहरी समझ थी।

नगर विन्यास: ग्रिड योजना और कार्यात्मक क्षेत्र विभाजन सिंधु सभ्यता के नगरों की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक उनकी ग्रिड आधारित योजना थी, जिसमें सड़कें समकोण पर बनाई गई थीं और वे आयताकार खंडों का निर्माण करती थीं। जैनसेन के अनुसार, मोहनजोदड़ो के नगर नियोजन में दिखाई देने वाली ज्यामितीय सटीकता और सुव्यवस्था उन्नत नगरीय ज्ञान का प्रमाण है।
इन नगरों को सामान्यतः दो प्रमुख भागों में विभाजित किया गया था-

1- ऊँचा दुर्ग क्षेत्र- जहाँ महत्वपूर्ण सार्वजनिक भवन स्थित थे।
2- निचला नगर - जहाँ आवासीय क्षेत्र और व्यापारिक गतिविधियों के केंद्र स्थित थे।

जारार अली के अनुसार, यह स्थानिक विभाजन एक योजनाबद्ध क्षेत्र निर्धारण को दर्शाता है, जिसमें प्रशासनिक या धार्मिक गतिविधियों को सामान्य घरेलू जीवन से अलग रखा गया था।[6] फिट्ज़सिमन्स का मत है कि इस प्रकार का नियोजन उच्च स्तर की दूरदर्शिता और नियंत्रण व्यवस्था को प्रदर्शित करता है, जो किसी केंद्रीकृत या सुव्यवस्थित स्थानीय प्रशासन की उपस्थिति का संकेत देता है।

जल निकासी प्रणाली: एक नागरिक चमत्कार सिंधु सभ्यता के नगरीय जीवन की सबसे प्रशंसित विशेषताओं में से एक इसकी विकसित जल निकासी प्रणाली थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे नगरों में लगभग प्रत्येक घर को मुख्य सड़कों के नीचे बनी ढकी हुई केंद्रीय नालियों से जोड़ा गया था। इन नालियों का निर्माण ईंटों से किया गया था और इनमें नियमित अंतराल पर निरीक्षण द्वार बनाए गए थे, ताकि उनकी सफाई और रखरखाव किया जा सके। कांस्य युग की अन्य सभ्यताओं की तुलना में यह एक अत्यंत उन्नत तकनीकी उपलब्धि थी। जैनसेन के अनुसार, इन नालियों का निर्माण हल्की ढलान के साथ किया गया था, जिससे गुरुत्वाकर्षण के माध्यम से अपशिष्ट जल का प्रवाह संभव हो सके।[7] यह ढलान आधारित अभियांत्रिकी का प्रारंभिक उदाहरण था। इस स्तर की स्वच्छता व्यवस्था केवल तकनीकी दक्षता को नहीं दर्शाती, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य और व्यक्तिगत स्वच्छता के प्रति विकसित समझ को भी प्रकट करती है, जो प्राचीन नगरों में अक्सर उपेक्षित रही थी। जल प्रबंधन यथा कुएँ, जलाशय और महान स्नानागार सिंधु नगरों के जीवन का आधार एक मजबूत जल प्रबंधन प्रणाली थी। विभिन्न नगरों में बड़ी संख्या में ईंटों से निर्मित कुएँ पाए गए हैं, जिनमें से कुछ व्यक्तिगत घरों के उपयोग के लिए थे, जबकि कुछ सामुदायिक उपयोग के लिए बनाए गए थे। जारार अली के अनुसार, केवल मोहनजोदड़ो में ही 700 से अधिक कुएँ पाए गए हैं, जो स्वच्छ जल की व्यापक उपलब्धता और जल वितरण में समानता की भावना को दर्शाते हैं। सिंधु सभ्यता की जल अभियांत्रिकी का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण मोहनजोदड़ो का महान स्नानागार है। यह एक विशाल अवनत संरचना थी, जिसका निर्माण जलरोधक ईंटों से किया गया था तथा इसके आसपास अन्य कक्ष भी निर्मित थे। जैनसेन का मानना है कि इसकी सावधानीपूर्वक निर्मित संरचना और आसपास स्थित कुओं तथा जल निकासी प्रणालियों से संकेत मिलता है कि इसका उपयोग धार्मिक और स्वच्छता दोनों उद्देश्यों के लिए किया जाता रहा होगा। धोलावीरा में जल प्रबंधन इससे भी अधिक विकसित रूप में दिखाई देता है, जहाँ विशाल जलाशयों और वर्षा जल संचयन प्रणालियों का निर्माण किया गया था। कुमार और गिडवानी के अनुसार, इन संरचनाओं का रणनीतिक स्थान निर्धारण और विशाल आकार यह दर्शाता है कि सिंधु सभ्यता के लोग मौसमी वर्षा को समझते थे तथा जल संरक्षण और उपयोग की टिकाऊ तकनीकों में सक्षम थे। आवासीय वास्तुकला: मानकीकरण और व्यावहारिकता सिंधु नगरों की आवासीय संरचनाएँ उच्च स्तर के मानकीकरण और मॉड्यूलर डिजाइन को प्रदर्शित करती हैं।

मुख्य रूप से समान अनुपात वाली पकी हुई ईंटों (सामान्यतः - 1:2:4 अनुपात) का प्रयोग किया जाता था, जिससे संरचनात्मक मजबूती और वास्तु सौंदर्य दोनों सुनिश्चित होते थे। घरों के आकार में भिन्नता थी, लेकिन उनमें कई समान विशेषताएँ मिलती हैं जैसे अनेक कमरे, केंद्रीय आंगन, समतल छतों तक जाने वाली सीढ़ियाँ, जल निकासी से जुड़े निजी स्नानघर, मैकइंटोश के अनुसार, अनेक घरों में विशेष स्नान क्षेत्र पाए गए हैं और कुछ घरों में निजी शौचालय भी थे, जो प्राचीन नगरों में अत्यंत दुर्लभ सुविधा थी। ये विशेषताएँ केवल तकनीकी कौशल को नहीं दर्शातीं, बल्कि व्यक्तिगत स्वच्छता और घरेलू सुविधा को दिए गए सांस्कृतिक महत्व को भी प्रदर्शित करती हैं। विभिन्न नगरों में समान आवासीय डिजाइन की पुनरावृत्ति एक साझा वास्तु परंपरा या समन्वित नागरिक नियमों की ओर संकेत करती है। सार्वजनिक भवन: अन्नागार, कार्यशालाएँ और नागरिक संरचना सिंधु सभ्यता की सार्वजनिक वास्तुकला मिस्र के पिरामिडों या मेसोपोटामिया के जिगुरातों जैसी विशाल स्मारकीय संरचनाओं वाली नहीं थी, बल्कि यह मुख्य रूप से उपयोगितावादी थी। हड़प्पा में पाए गए विशाल ईंट निर्मित प्लेटफ़ॉर्म, जिन्हें अन्नागार माना जाता है, केंद्रीकृत अनाज भंडारण और वितरण व्यवस्था का संकेत देते हैं। संभवतः इनका उद्देश्य अतिरिक्त उत्पादन का प्रबंधन करना और संकट के समय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना था। मनके निर्माण, मिट्टी के बर्तन और धातुकर्म जैसी कार्यशालाएँ अक्सर आवासीय क्षेत्रों के निकट पाई गई; लेकिन उन्हें प्रदूषण से बचाने के लिए अलग रखा गया था। यह सुविचारित नगरीय क्षेत्र विभाजन को दर्शाता है। जारार अली के अनुसार, सार्वजनिक और निजी भवनों में समानता यह दर्शाती है कि यह समाज राजकीय दिखावे की अपेक्षा नागरिक उपयोगिता को अधिक महत्व देता था। फिट्जसिमन्स भी इस विचार का समर्थन करते हैं कि विशाल मंदिरों और महलों की अनुपस्थिति संभवतः ऐसी सामाजिक व्यवस्था का संकेत है जो केंद्रीकृत सत्ता के बजाय सामूहिक कल्याण को प्राथमिकता देती थी।[8]

परिवहन और सड़क नियोजन:-

सिंधु नगरों में परिवहन व्यवस्था एक अत्यंत प्रभावी सड़क नेटवर्क द्वारा संचालित होती थी। मुख्य सड़कें इतनी चौड़ी थीं कि उन पर बैलगाड़ियाँ आसानी से चल सकें, जबकि छोटी गलियाँ पैदल आवागमन के लिए उपयोग होती थीं। ये सड़कें नियमित रूप से समकोण पर एक-दूसरे को काटती थीं और नगर को सुव्यवस्थित खंडों में विभाजित करती थीं।

जैनसेन के अनुसार, कई सड़कों का मध्य भाग थोड़ा ऊँचा और किनारे ढलानयुक्त बनाए गए थे, जिससे वर्षा जल आसानी से बह सके। यह पर्यावरणीय अनुकूलन का एक और उदाहरण है। विभिन्न नगरों में सड़क की चौड़ाई का मानकीकरण, किनारों पर पत्थर की पट्टियों और जल निकासी नालियों का उपयोग यह दर्शाता है कि यातायात और जल प्रबंधन के क्षेत्र में भी सिंधु सभ्यता अत्यंत विकसित थी। इस प्रकार की ग्रिड आधारित और जलवायु के अनुकूल नगर योजना उस समय के लिए एकीकृत नगरीय दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो विश्व की अन्य समकालीन सभ्यताओं में दुर्लभ थी।

अभियांत्रिकी विधियाँ और निर्माण सामग्री का उपयोग:-

सिंधु घाटी सभ्यता केवल नगरीय केंद्रों का एक समूह नहीं थी, बल्कि यह वहाँ के लोगों की अभियांत्रिकी दक्षता और निर्माण सामग्री संबंधी ज्ञान का जीवंत प्रमाण थी। इस सभ्यता की नगर नियोजन संबंधी उपलब्धियाँ सटीक निर्माण तकनीकों, बुद्धिमत्तापूर्ण सामग्री चयन और पर्यावरणीय चुनौतियों के अनुरूप विकसित अनुकूलनशील डिजाइनों पर आधारित थीं। मौसमी बाढ़, शुष्क जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों जैसी चुनौतियों का सामना करने के लिए सिंधु सभ्यता के लोगों ने मानकीकृत ईंटों, जलरोधी निर्माण तकनीकों और जलवायु-अनुकूल वास्तुकला का प्रयोग किया। उनकी अभियांत्रिकी पद्धतियाँ तर्कसंगत, विकेंद्रीकृत और टिकाऊ नगरीय विकास की दृष्टि को दर्शाती हैं। मानकीकृत ईंटें: अनुपात और मॉड्यूलर प्रणाली का विज्ञान सिंधु सभ्यता की वास्तुकला की सबसे निरंतर दिखाई देने वाली विशेषताओं में से एक मानकीकृत पकी हुई ईंटों का उपयोग है। इन ईंटों में सामान्यतः लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई का अनुपात 1:2:4 रखा जाता था। मैकइंटोश के अनुसार, इस मॉड्यूलर प्रणाली ने पंजाब स्थित हड़प्पा से लेकर गुजरात स्थित धोलावीरा तक सभ्यता के विभिन्न क्षेत्रों में निर्माण कार्यों में एकरूपता बनाए रखने में सहायता की। इस अनुपात का व्यापक प्रयोग केवल एक समान वास्तु शैली को नहीं दर्शाता, बल्कि यह संरचनात्मक मजबूती और निर्माण सामग्री के कुशल उपयोग की समझ को भी प्रदर्शित करता है। दानी और थापर के अनुसार, इस स्तर का मानकीकरण एक साझा ज्ञान प्रणाली की ओर संकेत करता है, जिसे संभवतः निर्माण विशेषज्ञ समूहों या किसी समन्वित नियोजन व्यवस्था के माध्यम से आगे बढ़ाया गया होगा, भले ही इस संबंध में कोई विशाल अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। एक ही प्रकार की ईंटों का उपयोग घरों, सार्वजनिक स्नानागारों, जल निकासी प्रणालियों और नगर की दीवारों में किया गया। यह तथ्य दर्शाता है कि सिंधु सभ्यता में नगरीय निर्माण के प्रति एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया था। जारार अली आगे बताते हैं कि ये ईंटें केवल आकार में समान नहीं थीं, बल्कि इन्हें भट्टियों में सावधानीपूर्वक पकाया जाता था, जिससे वे मौसम के प्रभावों को सहन कर सकें और लंबे समय तक आधारभूत संरचनाओं की स्थिरता बनाए रख सकें।

निर्माण तकनीक: टिकाऊ, उपयोगी और स्वच्छतापूर्ण सिंधु घाटी सभ्यता में ऐसी अनेक निर्माण तकनीकों का प्रयोग किया गया, जिनमें उपयोगिता, स्थायित्व और स्वच्छता को प्राथमिकता दी गई थी। दीवारों और फर्शों पर विशेष रूप से उन स्थानों पर चूना आधारित पलस्तर का उपयोग किया जाता था, जहाँ जल का अधिक संपर्क होता था, जैसे स्नान कक्ष और मोहनजोदड़ो का महान स्नानागार। जैनसेन के

अनुसार, इस तकनीक ने संरचनाओं को जलरोधी बनाने, रिसाव रोकने और सार्वजनिक स्नान सुविधाओं को स्वच्छ बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। घरों की छतें सामान्यतः समतल होती थीं और उन्हें लकड़ी की बीमों द्वारा सहारा दिया जाता था। घरों के भीतर बनी सीढ़ियाँ बहु-मंजिला वास्तुकला की संभावना को दर्शाती हैं।

अनेक घरों में फर्श के लिए दबाई हुई मिट्टी या पकी हुई ईंटों की टाइलों का प्रयोग किया जाता था, जिससे साफ-सुथरी और मजबूत सतह प्राप्त होती थी। जलाशयों और पानी से संबंधित संरचनाओं में बिटुमेन जैसे जलरोधी पदार्थों का प्रयोग सिंधु लोगों की जल नियंत्रण तकनीक की उन्नत समझ को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, भवनों में वायु संचार के लिए जालियाँ, रोशनदान और ढलानदार खुले स्थान बनाए जाते थे। ये विशेषताएँ गर्म जलवायु में प्राकृतिक शीतलन और बेहतर आंतरिक वायु गुणवत्ता की व्यावहारिक समझ को दर्शाती हैं। भवनों की स्थायित्व क्षमता: पर्यावरणीय चुनौतियों के अनुरूप अनुकूलन सिंधु सभ्यता की अभियांत्रिकी का सबसे दूरदर्शी पक्ष उसका पर्यावरणीय स्थायित्व पर ध्यान केंद्रित करना था। सिंधु सभ्यता के नगर मुख्य रूप से बाढ़ प्रभावित मैदानों और मानसूनी क्षेत्रों में स्थित थे, फिर भी उनके निर्माण और नगर विन्यास में बाढ़ के जोखिम को कम करने के लिए योजनाबद्ध उपाय दिखाई देते हैं। ऊँचे निर्माण प्लेटफॉर्म, सीढ़ीनुमा वास्तु संरचनाएँ और प्राकृतिक ढलानों के अनुरूप भवनों का विन्यास यह दर्शाता है कि जलभराव और संरचनात्मक क्षति को रोकने के लिए विशेष रणनीतियाँ अपनाई गई थीं। रमेश के अनुसार, मोहनजोदड़ो जैसे नगरों में बहु-स्तरीय प्लेटफॉर्म पाए गए हैं, जिनका उपयोग संभवतः महत्वपूर्ण नागरिक संरचनाओं को बाढ़ के पानी से सुरक्षित रखने के लिए किया जाता था। इसी प्रकार, गुलजार ने नगर संरचनाओं के विस्तार को स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों से जोड़ते हुए बताया है कि सिंधु सभ्यता का नगर नियोजन स्थिर नहीं था, बल्कि स्थानीय पर्यावरण के अनुसार परिवर्तित होने वाला था। सोम दत्त आदि ने भी वास्तु शैली के विकास को क्षेत्रीय जलवायु परिवर्तन से जोड़ा है।[9] उनके अध्ययन के अनुसार, परिपक्व हड़प्पा काल (लगभग 2600–1900 ईसा पूर्व) में वर्षा और नदी प्रवाह के स्वरूप में परिवर्तन के कारण अधिक मजबूत और मॉड्यूलर घरों, जलाशयों तथा बाढ़ प्रतिरोधी सीढ़ीनुमा संरचनाओं का विकास हुआ। उदाहरण के रूप में धोलावीरा को देखा जा सकता है, जो पथरीले भूभाग पर निर्मित एक उत्कृष्ट अभियांत्रिकी उपलब्धि है। यहाँ सीढ़ीनुमा कुएँ और वर्षा जल संचयन के लिए बनाए गए जलाशय यह दर्शाते हैं कि हड़प्पा वासियों ने शुष्क और जल-संकट वाले क्षेत्रों के अनुसार अपने नगर डिजाइन को सफलतापूर्वक अनुकूलित किया था। यहाँ तक कि भवनों की दिशा निर्धारण में भी विशेष सावधानी रखी गई थी, ताकि सड़कें और आवास सूर्य के प्रकाश तथा वायु प्रवाह का अधिकतम उपयोग कर सकें। यह सुविचारित स्थानिक योजना सिंधु सभ्यता की अभियांत्रिकी में निहित गहरी पर्यावरणीय चेतना को प्रदर्शित करती है।

अन्य प्राचीन सभ्यताओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण:-

प्राचीन नगरीकरण के संदर्भ में सिंधु घाटी सभ्यता अपनी डिजाइन अवधारणा और उसके क्रियान्वयन दोनों में एक विशिष्ट स्थान रखती है। जब इसकी तुलना समकालीन सभ्यताओं विशेष रूप से मेसोपोटामिया और प्राचीन मिस्र से की जाती है, तो सिंधु सभ्यता की एक अलग नागरिक पहचान सामने आती है। यद्यपि तीनों सभ्यताएँ लगभग एक ही कालखंड में विकसित हुईं और उन्होंने जटिल नगरीय समाजों का निर्माण किया, फिर भी वास्तुकला, प्रशासन और स्वच्छता व्यवस्था के प्रति उनके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण अंतर दिखाई देते हैं। अनेक दृष्टियों से सिंधु सभ्यता अपने समय से आगे दिखाई देती है, क्योंकि उसने धार्मिक स्मारकीयता और राजकीय गौरव प्रदर्शन की अपेक्षा कार्यात्मक, समावेशी और पर्यावरण से जुड़ी नगर योजना को प्राथमिकता दी। महलों और मंदिरों का अभाव: धार्मिक-राजकीय मॉडल के स्थान पर नागरिक मॉडल मेसोपोटामिया के उर जैसे नगर-राज्यों या मिस्र के थीब्स और मेम्फिस जैसे केंद्रों के विपरीत, सिंधु सभ्यता के नगरों में राजमहलों, विशाल मंदिरों या भव्य राजकीय समाधियों के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। व्हीलर और मैकइंटोश के अनुसार, मेसोपोटामिया और मिस्र दोनों में नगरीय जीवन विशाल स्मारकीय वास्तुकला के इर्द-गिर्द विकसित हुआ, जो दैवीय राजसत्ता और धार्मिक पदानुक्रम का प्रतीक थी।[10] सुमेर के जिगुरात और मिस्र के पिरामिड केंद्रीकृत सत्ता और धार्मिक विचारधारा के स्थायी प्रतीक थे। इसके विपरीत, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और धोलावीरा जैसे सिंधु नगरों में ऐसी स्मारकीय संरचनाओं का अभाव दिखाई देता है। दानी और थापर के अनुसार, यद्यपि सिंधु नगरों में ऊँचे दुर्ग क्षेत्र और सार्वजनिक भवन पाए गए हैं, लेकिन उनका सीधा संबंध किसी राजा, देवता या पुरोहित वर्ग से स्थापित नहीं किया जा सकता। यह स्थिति एक अधिक समानतावादी या तकनीकी दक्षता आधारित सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत करती है, जहाँ सत्ता का आधार धार्मिक अधिकार के बजाय नागरिक प्रशासन हो सकता था। फिट्जसिमन्स ने भी इस विचार को महत्व दिया है।

राजकीय वास्तुकला के स्थान पर सार्वजनिक वास्तुकला : उपयोगिता को प्राथमिकता:-

सिंधु सभ्यता की वास्तुकला का मुख्य केंद्र सार्वजनिक सुविधाएँ और नागरिक उपयोगिता प्रतीत होती है। नगरों में चौड़ी सड़कें, ढकी हुई नालियाँ, जलाशय और मानकीकृत आवासीय संरचनाएँ विकसित की गईं, जिनका उद्देश्य केवल शक्ति प्रदर्शन नहीं बल्कि नागरिक जीवन को सुविधाजनक बनाना था।

जारार अली और जैनसेन दोनों ने सिंधु नगर नियोजन में कार्यात्मक क्षेत्र विभाजन और पर्यावरणीय अनुकूलन की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया है। यह व्यवस्था मेसोपोटामिया और मिस्र के उन केंद्रीय धार्मिक परिसरों से भिन्न थी, जो प्रायः शासक वर्ग या धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आरक्षित होते थे। मोहनजोदड़ो की सबसे प्रसिद्ध संरचना महान स्नानागार भी संभवतः सामुदायिक या धार्मिक उपयोग से जुड़ी

थी, लेकिन इसके विशेष पुरोहितीय नियंत्रण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। पोसहल के अनुसार, सिंधु सभ्यता नगरीय क्रांति के भीतर एक "क्रांति" प्रस्तुत करती है, क्योंकि यह प्रतीकात्मक और ऊर्ध्वाधर सत्ता संरचनाओं के स्थान पर क्षैतिज रूप से संगठित नागरिक मॉडल को प्राथमिकता देती दिखाई देती है।[11]

स्वच्छता और नागरिक अभियांत्रिकी: सिंधु सभ्यता की श्रेष्ठता:-

जिस क्षेत्र में सिंधु घाटी सभ्यता अपने समकालीनों से सबसे अधिक आगे दिखाई देती है, वह है नगरीय स्वच्छता और नागरिक अभियांत्रिकी। जहाँ मिस्र और मेसोपोटामिया में सामान्यतः खुले जल प्रवाह मार्गों या साधारण अपशिष्ट गड्ढों का उपयोग किया जाता था, वहीं सिंधु सभ्यता ने पूरे नगर स्तर पर विकसित जल-मल निकासी प्रणाली स्थापित की थी। इसमें शामिल थी- ढकी हुई नालियाँ, सोख्ता गड्ढे, निरीक्षण कुएँ आदि घरों से मुख्य नालियों तक जुड़ी जल निकासी व्यवस्था जैनसेन और सोम दत्त आदि ने यह स्पष्ट किया है कि जल निकासी और अपशिष्ट प्रबंधन केवल कुछ स्थानों तक सीमित नहीं थे, बल्कि अनेक नगरों में एक समान मानकों के साथ लागू किए गए थे। कुमार और गिडवानी के अनुसार, स्वच्छता पर यह विशेष ध्यान सामूहिक कल्याण और सार्वजनिक उत्तरदायित्व की उस भावना को दर्शाता है, जो अन्य प्रारंभिक सभ्यताओं में समान स्तर पर दिखाई नहीं देती। इतने बड़े स्तर पर ऐसी आधारभूत संरचना का निर्माण और रखरखाव बिना किसी स्पष्ट लिखित प्रशासनिक अभिलेख या ज्ञात राजाओं के संभव होना, सिंधु समाज की उच्च प्रशासनिक क्षमता और संगठनात्मक दक्षता को दर्शाता है।

बहस, मिथक और व्याख्याएँ:-

यद्यपि सिंधु घाटी सभ्यता की नगरीय और अभियांत्रिकी उपलब्धियों ने व्यापक प्रशंसा प्राप्त की है, फिर भी इन उपलब्धियों ने अनेक स्थायी बहसों और व्याख्यात्मक चुनौतियों को जन्म दिया है। विद्वानों के बीच इस बात पर मतभेद है कि सभ्यता की उपलब्धियों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त शब्द "उन्नत" वास्तव में कितना उपयुक्त है, या यह केवल आधुनिक दृष्टिकोणों द्वारा प्राचीन समाजों पर आरोपित की गई धारणाओं का परिणाम है। जैसे-जैसे पुरातात्विक उत्खननों से नए प्रमाण प्राप्त हो रहे हैं, यह आवश्यक हो जाता है कि तथ्यात्मक प्रमाणों और रोमांटिक कल्पनाओं से निर्मित मिथकों के बीच अंतर किया जाए, विशेष रूप से तब जब सिंधु लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। क्या "उन्नत" शब्द एक काल-विसंगति है? सिंधु सभ्यता के नगर नियोजन और अभियांत्रिकी का वर्णन करने के लिए अक्सर प्रयुक्त होने वाले शब्द "उन्नत" को सावधानीपूर्वक समझने की आवश्यकता है। फिट्जसिमन्स और मैकइंटोश दोनों ने सिंधु सभ्यता की विकसित नगर संरचना, स्वच्छता प्रणाली और भौतिक संस्कृति की प्रशंसा की है। किंतु सिंह सावधान करते हैं कि यह शब्द कहीं-कहीं काल-विसंगतिपूर्ण व्याख्या का कारण बन सकता है। इससे इतिहास को एक ऐसी दिशा में देखने का खतरा उत्पन्न होता है, जहाँ प्राचीन समाजों का मूल्यांकन आधुनिक मानकों के आधार पर किया जाता है। यद्यपि ग्रिड आधारित नगर योजना और जल निकासी प्रणाली अपने समय के लिए निश्चित रूप से विशिष्ट उपलब्धियाँ थीं, लेकिन उनमें आधुनिक अर्थों जैसे "प्रगति" या "वैज्ञानिक तर्कशीलता" को सीधे जोड़ना उन सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक संदर्भों की उपेक्षा कर सकता है, जिनके आधार पर ये विकास हुए थे। दानी और थापर इस बात पर बल देते हैं कि यद्यपि सिंधु नगर उपयोगितावादी और अपेक्षाकृत समानतावादी दिखाई देते हैं, फिर भी उनकी पूर्णता को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने से बचना चाहिए। मिस्र और मेसोपोटामिया के विपरीत, जहाँ लिखित स्रोत प्रशासनिक और वैचारिक संदर्भ प्रदान करते हैं, सिंधु सभ्यता हमारे सामने मुख्य रूप से मौन ईंटों और प्रतीकों के रूप में उपस्थित है। इसलिए उपलब्ध प्रमाणों से आगे बढ़कर निष्कर्ष निकालना सावधानी की मांग करता है। लिपि की समस्या और अनुमानित शासन व्यवस्था सिंधु सभ्यता को समझने में सबसे बड़ी सीमाओं में से एक है, सिंधु लिपि का अभी तक अपठित होना। यह समस्या आज भी इसके शासन, धर्म और सामाजिक संरचना की पूर्ण समझ में बाधा बनी हुई है। रमेश के अनुसार, स्पष्ट रूप से पढ़े जा सकने वाले अभिलेखों के अभाव में विद्वान राजनीतिक संगठन को समझने के लिए वास्तुकला, नगर विन्यास और भौतिक अवशेषों पर निर्भर करते हैं, जिससे व्याख्याएँ कुछ हद तक अनुमान आधारित हो जाती हैं।[12]

इसी कारण सिंधु शासन व्यवस्था को लेकर अलग-अलग मत सामने आते हैं। कुछ विद्वान, जैसे गुलजार, इसे विकेंद्रीकृत और समुदाय आधारित नागरिक व्यवस्था मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान, जैसे जारार अली, आधारभूत संरचनाओं की समानता को एक समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था का प्रमाण मानते हैं।

लेकिन राजाओं, कानूनों या धार्मिक सिद्धांतों की पुष्टि करने वाले अभिलेखों के अभाव में ये सभी व्याख्याएँ संभावनाओं के स्तर पर ही रहती हैं। पोसहल इसे "जटिलता का विरोधाभास" कहते हैं अर्थात् एक ऐसी विकसित सभ्यता, जिसमें उच्च स्तर की सामाजिक और तकनीकी जटिलता तो दिखाई देती है, लेकिन स्पष्ट शासक या राज्य विचारधारा के प्रमाण नहीं मिलते।

स्मारकीय मौन: विकेंद्रीकरण या लुप्त वैभव:-

राजमहलों और विशाल मंदिरों जैसी स्मारकीय वास्तुकला की अनुपस्थिति ने सिंधु सभ्यता की राजनीतिक व्यवस्था को लेकर नए प्रश्न उत्पन्न किए हैं। व्हीलर और कुमार यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या बड़े निर्माणों का अभाव वास्तव में कमजोर केंद्रीकृत सत्ता का संकेत है या फिर यह एक ऐसी सांस्कृतिक प्राथमिकता को दर्शाता है जिसमें गैर-पदानुक्रमीय डिजाइन को महत्व दिया गया। जहाँ मेसोपोटामिया और मिस्र

की सभ्यताओं ने अपनी शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए ऊर्ध्वाधर स्मारकीय संरचनाएँ निर्मित कीं, वहीं सिंधु सभ्यता ने संभवतः अपना निवेश सार्वजनिक सुविधाओं और नागरिक आधारभूत संरचनाओं में किया। यह एक क्षैतिज शक्ति संरचना की ओर संकेत करता है। हालाँकि यह संभावना भी व्यक्त की जाती है कि कुछ स्मारकीय संरचनाएँ समय के साथ नष्ट हो गई हों या वे ऐसी सामग्री से बनी हों जो संरक्षित नहीं रह सकीं। निश्चित प्रमाणों के अभाव में विद्वान अभी भी दो दृष्टिकोणों के बीच विभाजित हैं, एक ओर जानबूझकर अपनाई गई समानतावादी व्यवस्था और दूसरी ओर लुप्त हो चुकी स्मारकीय परंपरा।

आदर्श समाज का मिथक:-

अंततः सिंधु सभ्यता को एक शांतिपूर्ण, समानतावादी आदर्श समाज के रूप में प्रस्तुत करने वाला लोकप्रिय मिथक भी विद्यमान है—एक ऐसा प्राचीन समाज जहाँ युद्ध, सामाजिक असमानता या दमन का अभाव था।

यह विचार राष्ट्रवादी विमर्शों और वैश्विक मीडिया में लोकप्रिय हुआ है, लेकिन इसके समर्थन में पर्याप्त पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। दानी और थापर का मत है कि ऐसी धारणाएँ प्राचीन समाजों की जटिलताओं को नजरअंदाज करती हैं। संभव है कि सिंधु समाज में भी संघर्ष, असमानता और सामाजिक परिवर्तन जैसी प्रक्रियाएँ मौजूद रही हों, भले ही वे अन्य सभ्यताओं की तरह स्पष्ट रूप से दिखाई न देती हों। सिंह इस प्रकार के मिथक निर्माण की आलोचना करते हुए कहते हैं कि सभ्यता की अत्यधिक सामंजस्यपूर्ण छवि प्रस्तुत करने से सामाजिक तनाव, पर्यावरणीय दबाव और पतन की प्रक्रियाओं को समझने में बाधा आ सकती है।[13] नगरों के परित्याग और नदी मार्गों में परिवर्तन से जुड़े प्रमाण यह संकेत देते हैं कि सिंधु सभ्यता का अंत भी अनेक जटिल कारणों का परिणाम था। एक पूर्ण और आदर्श अतीत की कल्पना आधुनिक समाज को आकर्षक लग सकती है, लेकिन यह पुरातात्विक प्रमाणों से प्राप्त उस जटिल और कई बार अस्पष्ट वास्तविकता से मेल नहीं खाती, जिसे इतिहासकार समझने का प्रयास करते हैं।

निष्कर्ष:-

सिंधु घाटी सभ्यता के नगर नियोजन का अध्ययन जिसमें इसकी ग्रिड आधारित नगर संरचना, मानकीकृत ईंट वास्तुकला, विकसित जल निकासी प्रणाली और उन्नत जल प्रबंधन व्यवस्था शामिल हैं, एक ऐसे समाज को प्रस्तुत करता है, जिसके पास नागरिक डिजाइन और पर्यावरणीय अनुकूलन की अद्भुत क्षमता थी। प्रारंभिक धारणाओं के विपरीत, जिनमें दक्षिण एशिया की प्राचीन सभ्यताओं को केवल कृषि आधारित और अविकसित माना गया था, वर्तमान पुरातात्विक प्रमाण यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करते हैं कि सिंधु घाटी सभ्यता तकनीकी रूप से सक्षम, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील और नागरिक केंद्रित समाज थी। मेसोपोटामिया और मिस्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन से सिंधु सभ्यता की विशिष्टता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहाँ अन्य प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी शक्ति और वैभव को प्रदर्शित करने के लिए विशाल स्मारकों के निर्माण को प्राथमिकता दी, वहीं सिंधु सभ्यता ने सार्वजनिक उपयोगिता, स्वच्छता व्यवस्था और व्यापक नागरिक सुविधाओं में निवेश किया। इन निष्कर्षों के आधार पर यह शोध अपने केंद्रीय तर्क को पुनः स्थापित करता है कि सिंधु घाटी सभ्यता का नगरीय विकास केवल संयोगवश बस्तियों के विस्तार का परिणाम नहीं था, बल्कि यह एक सुविचारित और अभियांत्रिकी आधारित प्रणाली थी, जो स्थायित्व, स्वच्छता, मॉड्यूलर निर्माण और अनुकूलन क्षमता के सिद्धांतों पर आधारित थी। सिंधु सभ्यता में राजमहलों और विशाल मंदिरों की अनुपस्थिति को किसी अविकास के संकेत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसके विपरीत, यह संभवतः एक विशिष्ट सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था को दर्शाती है, जिसमें सत्ता के अत्यधिक केंद्रीकरण के स्थान पर विकेंद्रीकृत व्यवस्था, सामूहिक सहयोग और नागरिक भागीदारी को महत्व दिया गया था।

यद्यपि सिंधु लिपि का रहस्य अभी तक सुलझ नहीं पाया है, फिर भी इसके भौतिक अवशेष और वास्तु विरासत इस बात के शक्तिशाली प्रमाण हैं कि यह ऐसी सभ्यता थी, जिसने सामूहिक कल्याण और पर्यावरणीय संतुलन को प्राथमिकता दी। ये निष्कर्ष प्रारंभिक अभियांत्रिकी और नगरीय विकास के इतिहास में दक्षिण एशिया की भूमिका का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता को दर्शाते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता कोई सीमांत या अन्य सभ्यताओं से प्रभावित समाज मात्र नहीं थी, बल्कि यह अपने आप में टिकाऊ नगर निर्माण की एक अग्रणी सभ्यता थी। प्राचीन तकनीकी और नगरीय विकास के वैश्विक इतिहास में इसके योगदान को अधिक व्यापक मान्यता दिए जाने की आवश्यकता है। भविष्य के अध्ययन के लिए पुरातत्व, जल विज्ञान, भू-स्थानिक विज्ञान, पदार्थ अभियांत्रिकी और जलवायु अध्ययन जैसे विभिन्न विषयों को एक साथ जोड़कर अंतःविषयक शोध की आवश्यकता है। ऐसे समन्वित प्रयासों के माध्यम से ही विद्वान उन जटिल प्रणालियों को पूरी तरह समझ पाएँगे, जिन्होंने मानव इतिहास के सबसे प्रारंभिक नगरीय प्रयोगों में से एक को स्थायित्व प्रदान किया। सिंधु नगरों को केवल खंडहरों के रूप में नहीं, बल्कि पर्यावरणीय और आधारभूत संरचनात्मक बुद्धिमत्ता के प्रारूप के रूप में समझने से हमें न केवल इतिहास की बेहतर समझ प्राप्त होती है, बल्कि वर्तमान समय में स्थायित्व और आपदा-प्रतिरोधी विकास के लिए महत्वपूर्ण सीख भी मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. दानी, ए. एच. एवं थापर, बी. के. (1999). *हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन्स ऑफ सेंट्रल एशिया.* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. मैकइंटॉश, जे. आर. (2008). *द एंशिएंट इंडस वैली: न्यू पर्सपेक्टिव्स.* एबीसी-सीएलआईओ, कैलिफ़ोर्निया।
3. कुमार, एम. एवं गिदवानी, एन. एन. (2021). *इंडस वैली सिविलाइजेशन.* प्लूटो आईएएस पब्लिकेशन्स. चैप्टर–3: *इंडस वैली सिविलाइजेशन–2.*
4. गुलज़ार, एस. (2022). *सेटलमेंट स्केलिंग एंड अर्बन इन्फ्रास्ट्रक्चर: ए कम्पेरेटिव अप्रोच टू सेटलमेंट्स फ्रॉम द एंशिएंट इंडस सोसाइटी* (डॉक्टोरल डिसर्टेशन). यूनिवर्सिटी ऑफ गोथेनबर्ग।
5. रमेश, एस. आर. (2023). *द इंडस वैली सिविलाइजेशन: 3000 बी.सी. टू 1600 बी.सी.*
6. अली, जे. (2021). *इंडस वैली सिविलाइजेशन.*
7. जान्सेन, एम. (1985). *मोहनजो-दड़ो: सिटी ऑफ द इंडस वैली. एंडेवर,* 9(4), पृ. 161–169।
8. फिट्ज़सिमन्स, एम. ए. (1970). *द इंडस वैली सिविलाइजेशन. द हिस्ट्री टीचर,* 4(1), पृ. 9–22।
9. दत्त, एस., गुप्ता, ए. के., सिंह, एम., जगलान, एस., सरवनन, पी., बालाचंदिरन, पी. एवं सिंह, ए. (2019). *क्लाइमेट वैरिएबिलिटी एंड इवोल्यूशन ऑफ द इंडस सिविलाइजेशन. क्वाटरनरी इंटरनेशनल,* 507, पृ. 15–23।
10. व्हीलर, एम. (1968). *द इंडस सिविलाइजेशन* (तृतीय संस्करण). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. पोसेल, जी. एल. (1990). *रिवोल्यूशन इन द अर्बन रिवोल्यूशन: द इमर्जेन्स ऑफ इंडस अर्बनाइजेशन. एनुअल रिव्यू ऑफ एंथ्रोपोलॉजी,* 19, पृ. 261–282।
12. कुमार, आर. (2023). *अनवेलिंग द एनवायरनमेंटल कैटेलिस्ट्स: अनरैवलिंग द डिक्लाइन ऑफ द इंडस वैली सिविलाइजेशन. करंट रिसर्च जर्नल ऑफ हिस्ट्री,* 4(9), पृ. 1–4।
13. सिंह, ए. (2018). *इम्पॉर्टेंस एंड इम्पैक्ट्स ऑफ इंडस वैली सिविलाइजेशन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट,* 3(2), पृ. 75–78।

◀◀ ▶▶

डॉ. विवेकी राय की साहित्यिक भाव–भूमि : परंपरा, आधुनिकता तथा लोक–चेतना का द्वंद्व

डॉ. सूरज सिंह*

शोध सार-

भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिकवांगमयके विराट अंक में ग्रामीण अंचल की धूल, मिट्टी, नीर और समीर को अपनी उर्वर रचनात्मकता का आधार बनाने वाले विरल एवं विलक्षण रचनाकारों में डॉ० विवेकी राय का स्थान अद्वितीय है। उत्तर-औपनिवेशिक भारत में जब विकास के केंद्रीकृत आधुनिक प्रतिमानों ने सुनियोजित ढंग से ग्रामीण संरचनाओं को मुख्यधारा से विस्थापित करना आरम्भ किया, तब हिंदी और विशिष्टतः भोजपुरी साहित्य की आधारशिला पर अवस्थित होकर एक सजग कृषक-साहित्यकार इस युगीन-परिवर्तन के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पक्षों को शब्द-बद्ध करके अपने युग-द्रष्टा होने का विनम्र परिचय दे रहे थे। विदित है कि डॉ०विवेकी राय का संपूर्ण सृजन संसार केवल ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों का रोमानी अंकन नहीं है, बल्कि वह परंपरा और आधुनिकता के मध्य अनवरत गतिमान उस गहन रचनात्मक और सांस्कृतिक द्वंद्व का जीवंत साक्ष्य है,जिसमें एक ओर अपने अतीत और लोक-मूल्यों को संरक्षित-समायोजितकरने की निश्छल छटपटाहट परिलक्षित होती हैं, तो दूसरी ओर आधुनिकता के घातक और विघटनकारी प्रभावों से उद्‌भूत विकराल मानवीय चिंताएँ विद्यमान होती हैं।

बीज शब्द- भारतीय वांग्मय, कृषक-साहित्यकार, सांस्कृतिक द्वंद्व, सामंती तत्व, राजनैतिक विसंगति, भोजपुरी गद्य, समकालीन जीवन, सर्वांगीण विकास, व्यावहारिक आवश्यकताएँ, आयातित बौद्धिकता इत्यादि।

हिंदी और भोजपुरी के विवेचनात्मक परिदृश्य में डॉ०विवेकी राय को मुंशी प्रेमचंद और फणीश्वर नाथ 'रेणु ' के परम्परा की एक अत्यंत महत्वपूर्ण समन्वयक कड़ी के रूप में देखा जाता है। प्रेमचंद जहाँ ग्रामीण यथार्थ के सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोधों और औपनिवेशिक शोषण के चक्र को अपनी संवेदनात्मक दृष्टि का अनिवार्य अंश बनाते हैंऔर रेणु जहाँ अंचल विशेष की सांस्कृतिक लय,राग-विराग और संगीतात्मकता को आंचलिक रचनाओं के माध्यम से प्रतिस्थापित करते हैं, वहीं डॉ०विवेकी राय इन दोनों परंपराओं का एक जैविक एवं कलात्मक संश्लेषण करते हैं। उनके यहाँ ग्रामीण यथार्थ की वह सोंधी और अनगढ़ परिमल विद्यमान है जो खेतों में अहर्निश धूल-धूसरित, श्वेदकण-स्नाता वास्तविक कृषक के जीवन से उपजती है। डॉ०विवेकी राय की दृष्टि में 'लोक' कोई स्थिर अथवा जड़ अवधारणा नहीं है,बल्कि वह एक निरंतर गतिशील और परिवर्तनशील शाश्वत जीवन-प्रवाह है। जब वे भोजपुरी एवं हिंदी में गद्य रचते हैं, तो उनकी लोक-चेतना केवल परंपरा के महिमामंडन तक परिमित नहीं रहती। वे लोक के अंतरतम में समाहित रूढ़ियों,अंधविश्वासों और शोषक सामंती तत्वों पर कठोर प्रहार भी करते हैं और इस प्रकार परंपरा और आधुनिकता के मध्य एक विवेक-पूर्ण संतुलन की पक्षधरता स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत शोध-प्रतिवेदन के द्वारा डॉ०विवेकी राय के समग्र रचना-संसार (विशिष्टतः भोजपुरी कृतियों) का संक्षिप्त विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार उनके सर्जना-कर्म से प्रसूत हिन्दी साहित्य परंपरा, आधुनिकता और लोक-

* भोजपुरी अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चेतना के रचनात्मक द्वंद्व को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करता है। अधोलिखित विविध प्रासंगिक बिन्दुओं में यह समग्र विवेचन दर्शनीय है।

❖ भोजपुरी साहित्य का ऐतिहासिक विकास-क्रम और डॉ० विवेकी राय

भोजपुरी साहित्य का इतिहास प्रायः 700 वर्ष पुरातन है, जिसकी विकास-यात्रा प्रमाणतः चौदहवीं शताब्दी से आरम्भ होती है। इस विपुल लोक-भाषा के साहित्यिक विकास को मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है- **"प्रारंभिक चरण (1500-1920), प्रगति चरण (1920-1947) और प्रवर्धन चरण (1947 से अद्यावधि)।"**[1] सिद्ध संतों और चर्यापदों के गीतों में भोजपुरी का सर्वाधिक प्राचीन रूप दिखाई देता है। मध्यकाल में नाथ संप्रदाय के प्रसिद्ध संत चौरंगीनाथ की रचना 'प्राण सांकली' और कबीरदास एवं धर्मदास जैसे भक्त कवियों के भजनों में भोजपुरी के अनगढ़ रूप ने एक जीवंत संवादधर्मिता प्राप्त की। आधुनिक काल के आरम्भ में इसे भिखारी ठाकुर और राहुल सांकृत्यायन जैसे लोक-चेता मनीषियों का वरदहस्त प्राप्त हुआ। संक्षेप में भोजपुरी साहित्य की ऐतिहासिक विकास-यात्रा का वर्गीकरण निम्नवत सारणी में अवलोकन योग्य है :-

ऐतिहासिक कालखंड	**प्रमुख साहित्यिक विधाएँ एवं प्रवृत्तियाँ**	**युगीन प्रतिनिधि रचनाकार**	**ख्याति प्राप्त कृतियाँ**
प्रारंभिक चरण (1500-1920)	लोक संगीत, गजलें, पारंपरिक नाटक, दलित चेतना का उदय	बुलकी दास, बुल्ला साहेब,तेग अली तेग, हीरा डोम	'सुधाबुंद' (1884), **'देवक्षर चरित' (1884-प्रथम नाटक)**[2], 'बदमाश दर्पण' (1885), 'अछूत की शिकायत'(1914)
प्रगति चरण (1920-1947)	राष्ट्रीय आंदोलन और देशभक्ति के स्वर, लोक-नाट्य आंदोलन	रघुवीर नारायण, मनोरंजन प्रसाद सिन्हा,भिखारी ठाकुर,राहुल सांकृत्यायन	'बटोहिया' (गीत), 'फिरंगिया' (गीत), ' बिदेसिया' (गीत-नाट्य), 'मेहरारुन के दुर्दशा' (नाटक)
प्रवर्धन चरण (1947-वर्तमान)	कहानी संकलन, आंचलिक उपन्यास, ललित निबंध, समकालीन विमर्श	रमेश चंद्र सिन्हा, पांडेय कपिल, डॉ० विवेकी राय	'जेहल के सनदी' (1948), **'बिंदिया' (1956-प्रथम उपन्यास)**[3], 'के कहल चुनरी रँगा ल' (1968), 'अमंगलहारी' (1998)

भोजपुरी भाषा के इस वृहत् साहित्यिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में डॉ० विवेकी राय का अभ्युदय प्रवर्धन चरण की अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है। वे एक ऐसे समय में भोजपुरी गद्य के क्षेत्र में उदीयमान हुए, जब इस समृद्ध भाषा को केवल अनपढ़ (अशिक्षित) गँवारों के बोलने की बोली समझा जाता था और अकादमिक क्षेत्रों में इसकी स्वीकार्यता अत्यंत न्यून थी। डॉ०विवेकी राय ने अपने ललित निबंध संग्रह 'के कहल चुनरी रँगा ल' (1968) और ' अमंगलहारी' (1998) जैसे उपन्यासों के माध्यम से भोजपुरी गद्य को आधुनिक गरिमा और अनूठी रचनात्मकता प्रदान की,जिससे भोजपुरी गद्य को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।

❖ परंपरा और आधुनिकता का वैचारिक संघर्ष : परिवर्तनकामी गाँवों का समाजशास्त्र

डॉ० विवेकी राय के साहित्य में परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व कोई सतही बौद्धिक विमर्श नहीं है, बल्कि यह स्वातंत्र्योत्तर भारतीय गाँवों में हो रहे उस गंभीर परिवर्तन का जीवित इतिहास है जिसने समूची कृषि संस्कृति के अस्तित्व पर ही संकट खड़ा कर दिया है। उनके लिए गाँव कोई काल्पनिक रोमानियतका संसारअथवा शुद्ध नॉस्टेल्जिया की बतरस नहीं है, बल्कि वह उनका मन, प्राण और आत्मा है। वे लिखते स्पष्ट हैं कि **"गाँव एक राग है,एक कल्पना है, एक विस्तार है और सहजता है... संक्षेप में कहें तो संस्कृति का आधान है।"**[4] अतः गाँव पर होने वाला प्रत्येक आधुनिक और तकनीकी प्रहार उनकी अपनी आत्मा पर लगने वाला आघात बन जाता है। 1990 के दशक के उपरांत जब देश में आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण का दौर आया, तब भारतीय गाँवों के पारंपरिक ढाँचे में भयावह विश्रृंखलन आरम्भ हुआ। इस अपूर्व परिवर्तन को डॉ०विवेकी राय ने अतीव संजीदगी और क्षोभ के साथ रेखांकित किया। गाँव के भीतर सदियों से स्थापित सामाजिक समरसता, भ्रातृत्व भाव, पारस्परिक उल्लास और उत्सवधर्मिता सब कुछ पश्चिमी प्रभाव की उपभोक्ता-वादी आधुनिकता की भेंट चढ़ गया। इसके परिणामस्वरूप गाँव न तो पूर्णतः नगर बन पाया और न ही अपनी पारंपरिक सहजता और राग को संरक्षित रख सका। नगर की अनियोजित आधुनिकता ने गाँव के भोलेपन को चकनाचूर कर वहाँ पारस्परिक ईर्ष्या, प्रदर्शन-वृत्ति और स्वार्थपरता की नई भाव-भूमि निर्मित कर दी। इस वैचारिक द्वंद्व का एक अत्यंत व्यावहारिक रूप बना- गाँवों में बढ़ती हुई ' कचहरी संस्कृति'। पारंपरिक गाँवों में जहाँ पारस्परिक विवादों को सुलझाने के लिए बुजुर्गों की चौपाल और पंचायती परंपरा पर विश्वास किया जाता था, आधुनिकता ने वहाँ न्यायालयी अभियोगों की ऐसी अंतहीन और उबाऊ झड़ी लगा दी जिससे गाँव की सुख-शांति पूर्ण-रूप से नष्ट हो गई है। अल्पकालिक कार्य अब जीवन-भर कचहरियों के चक्कर काटते हुए होता है। नदी तट पर बैठकर घरों की स्त्रियों द्वारा की जाने वाली सहज बतरस और तरुणी कन्याओं द्वारा कपार (सिर) पर बर्तन लादकर रच-रचकर माँजने की वह सामूहिक गँवई संस्कृति अब इतिहास के धुंधलके में विलुप्त हो गई है। कहना न होगा कि डॉ०विवेकी राय का साहित्य आधुनिकता जनित अकेलेपन, संवाद-हीनता और नैतिक मूल्यों के स्खलन को अत्यंत गहरी व्यथा के साथ उजागर करता है।

❖ भोजपुरी गद्य के मील के पत्थर : डॉ० राय कृत कृतियों का विवेचनात्मक अनुशीलन

डॉ० विवेकी राय के भोजपुरी गद्य लेखन का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि उन्होंने इस भाषा के शास्त्रीय और व्याकरणिक सौंदर्य को उसके ठेठ आंचलिक तत्वों के साथ सुरक्षित रखा है। उनके प्रमुख एवं प्रतिनिधि भोजपुरी ग्रंथों की संक्षिप्त समीक्षा निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत की जा सकती है :-

➢ 'के कहल चुनरी रँगा ल' : भोजपुरी ललित निबंधों का युगांतरकारी स्वर

सन 1968-69 में भोजपुरी संसद द्वारा प्रकाशित 'के कहल चुनरी रँगा ल'भोजपुरी गद्य का ऐतिहासिक प्रस्थान-बिंदु है। यह भोजपुरी भाषा में प्रकाशित होने वाला पहला संपूर्ण निबंध संग्रह है, जिसने भोजपुरी गद्य लेखन की संभावनाओं के कपाट खोल दिए। इस संग्रह के निबंधों में डॉ०विवेकी राय की वर्णन-शैली की तुलना किसी बायस्कोप के चलते दृश्य से की जा सकती है, जहाँ एक के पश्चात् एक ग्रामीण बिंब अत्यंत सजीव और गतिशील होकर पाठकों के समक्ष प्रकट होते हैं। साहित्यिक आलोचक **"ईश्वर चंद्र सिन्हा ने इस संग्रह के निबंधों की उच्च कोटि के गद्य कौशल को देखते हुए इसकी तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार बेकन के निबंधों से की है।"**[5] साथ ही हिंदी साहित्य में जो स्थान बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र के भारतेंदु युगीन निबंधों को प्राप्त है, वही गरिमापूर्ण

और रचनात्मक स्थान का भोजपुरी में डॉ०विवेकी राय के इस निबंध संग्रह को प्राप्त हुआ है। इन निबंधों में समकालीन जीवन की विसंगतियों और बदलते गँवई वातावरण पर गहरा दार्शनिक चिंतन और व्यंग्य दृष्टिगत होता है। उच्च शिक्षा और अकादमिक पाठ्यक्रमों के लिए इस निबंध संग्रह को भोजपुरी का एक अनिवार्य मानक माना गया है।

➢ **'अमंगलहारी' : राष्ट्रीय चेतना, युद्ध-यथार्थ और लोक-प्रतिबद्धता का भव्य दृश्य**

वर्ष 1998 में भोजपुरी संस्थानपटना द्वारा प्रकाशित 'अमंगलहारी' डॉ०विवेकी राय का अत्यंत लोकप्रिय और देशभक्ति की पृष्ठभूमि पर लिखा गया लघु भोजपुरी उपन्यास है। वास्तव में यह उपन्यास उनके सुविख्यात विशाल हिंदी उपन्यास 'मंगल भवन' (1994) का ही पूरक और संवेदनात्मक उपसंहार है। 'मंगल भवन अमंगलहारी' संज्ञक प्रसिद्ध चौपाई की अर्द्धाली इन दोनों उपन्यासों के परस्पर संयोजन से ही पूर्ण होती है। इस उपन्यास को भोजपुरी में लिखे जाने का एक अत्यंत रोचक नेपथ्य है। पांडेय कपिल और भोजपुरी साहित्य जगत के अन्य मनीषी लेखकों के लगातार अनुरोध और आग्रह के दबाव में डॉ०विवेकी राय ने यह संकल्प लिया था कि वे इस बार अपनी मूल कथा-भूमि को भोजपुरी लोक-भाषा में ही आकार देंगे। 'मंगल भवन' की सृजन-यात्रा के समय उन्हें जिस मानसिक और शारीरिक व्याधि का सामना करना पड़ा था,उसने उन्हें पर्याप्त उद्वेलित कर दिया था। ऐसे नकारात्मक और अवसाद-पूर्ण क्षणों में भी 'अमंगलहारी' की परिकल्पना उनके मन में निरंतर आंदोलित होती रही। स्वास्थ्य कारणों से उन्होंने किसी बड़े और शाखा-प्रशाखाओं वाले भारी-भरकम उपन्यास के जाल-जंजाल से बचकर, कथा-वस्तु को अत्यंत चुस्त, सीधे-सपाट और लघु उपन्यास के रूप में भोजपुरी में ढालने का निर्णय लिया।

'अमंगलहारी' की कथा-वस्तु 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौर में देश की सीमाओं पर होने वाले संघर्ष और उसके प्रभाव-स्वरूप ग्रामीण अंचलों में उत्पन्न हुई अभूतपूर्व राष्ट्रीय एकता और समस्वरता को सहेजती है। उपन्यास की कहानी वहीं से आरम्भ होती है जहाँ 'मंगल भवन'का अंत होता है। मेजर जगदीश की विवशता और उनका अपने गुरुजी के साथ संवाद अत्यंत आत्मीय और विचारोत्तेजक है। इसी उपन्यास में कश्मीर मोर्चे के कूंब क्षेत्र में एक भयंकर विस्फोट के समय वीरगति प्राप्त करने वाले देशप्रेमी मेजर सौदागर सिंह का अप्रतिम चरित्र भी सामने आता है। सौदागर सिंह को जब उनकी रुग्ण माँ का तार प्राप्त होता है, तो वे राष्ट्रभक्ति को प्राथमिकता देते हुए उत्तर देतेहैं कि **"इस संकटकाल में उसे जन्म देने वाली माँ की सेवा के लिए अवकाश नहीं है।"[6]** यह प्रसंग उपन्यास को देशभक्ति और लोक-एकता की एक नई ऊँचाई प्रदान करता है।

➢ **'गुरु-गृह गयौ पढ़न रघुराय' : आधुनिक शिक्षा-प्रणाली और पारंपरिक जीवन-मूल्यों का टकराव**

सन 1992 में प्रकाशित यह निबंध-संग्रह रामचरितमानस की प्रसिद्ध चौपाई **'गुरु गृह गयउ पढ़न रघुराई, अल्पकाल विद्या सब पाई'** के व्यंग्यात्मक प्रतिरूप के रूप में सामने आता है। इस उपन्यास के माध्यम से डॉ०विवेकी राय ने आधुनिक मैकालेवादी पश्चिमी शिक्षा पद्धति और भारतीय पारंपरिक गुरुकुल ज्ञान-परंपरा के मध्य की वैचारिक खाई को उजागर किया है। वे अत्यंत मार्मिकता के साथ दिखाते हैं कि किस प्रकार आधुनिक शिक्षा मनुष्य को संवेदनशील बनाने की अपेक्षा केवल डिग्रीधारी और स्वार्थी उपभोक्ता में परिवर्तित कर रही है। नैतिक मूल्यों और पारंपरिक ग्राम्य-संस्कृति के पतन के लिए आज की अनियोजित शिक्षा व्यवस्था ही मुख्य रूप से उत्तरदायी है।

- **'ओझइती' कहानी-संग्रह : लोक-विश्वास, रूढ़ियाँ और यथार्थ का संघर्ष**

डॉ०विवेकी राय का यह महत्वपूर्ण भोजपुरी कहानी-संग्रह ग्रामीण समाज में गहरे धँसे अंधविश्वासों, ओझइती (झाड़-फूंक) और अशिक्षा के यथार्थ पर करारा प्रहार करता है। वे दिखाते हैं कि किस प्रकार गाँवों में वैज्ञानिक सोच और मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण लोग भूत-प्रेत और ओझाओं के जाल में फँसकर अपनी गाढ़ी कमाई और जीवन गँवा बैठते हैं। विवेकी राय लोक-संस्कृति के सच्चे प्रेमी तो हैं, परंतु वे लोक के भीतर की रूढ़ियों को उखाड़ने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि का पुरजोर समर्थन भी करते हैं।

- **'सोनामाटी' और आंचलिक यथार्थ की पराकाष्ठा**

डॉ० विवेकी राय के संपूर्ण उपन्यास-संसार में 'सोनामाटी'(1983) को उनकी प्रौढ़तम और मील का पत्थर मानी जाने वाली आंचलिक कृति के रूप में स्वीकार किया जाता है। समकालीन जीवन के जटिल यथार्थ को इसकी संपूर्ण सघनता के साथ चित्रित करने के कारण उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने इस उपन्यास को वर्ष 1987 में 'प्रेमचंद पुरस्कार'से सम्मानित किया था। यह समग्र उपन्यास स्वयं में ग्राम्य-जीवन यथार्थ का अद्भुत महाकाव्य है। ' सोनामाटी' उपन्यास का केंद्रीय भूगोल गाजीपुर और बलिया जिलों की सीमा पर स्थित 40-50 किलोमीटरके व्यास में फैला 'करइल' अंचल है। यहाँ की गहरी काली मिट्टी (करइल) जहाँ फसल उगाने के लिए कठिन परिश्रम की माँग करती है,वहीं यहाँ के मनुष्यों का चरित्र भी इसी कठोरता और अदम्य जिजीविषा से निर्मित हुआ है। डॉ०विवेकी राय ने करइल अंचल के किसानों के जीवन-संघर्ष, उनके खान-पान, ज्योतिष देखने की पारंपरिक प्रवृत्तियों और सामाजिक ताने-बाने का अत्यंत प्रामाणिक चित्र खींचा है।

उपन्यास की सर्वोत्कृष्ट समाज-शास्त्रीय अंतर्दृष्टि यह है कि यह स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण भारत में पनपने वाले नए शोषक वर्ग को उजागर करता है। डॉ०विवेकी राय किसी दूर बैठे सामंती राजा अथवा जमींदार को खलनायक के रूप में नहीं दिखाते, बल्कि गाँव के भीतर के ही उन बड़े और खाते-पीते किसानों का चित्रण करते हैं जिन्होंने छोटे और सीमांत किसानों की जमीनों को हड़पना आरम्भ कर दिया है। जमींदारी उन्मूलन के उपरांत प्रस्फुटित शोषकों केइस नए अवतार को डॉ०विवेकी राय 'भूमिखोर भेड़िए' की संज्ञा देते हैं। ये बड़े किसान वास्तव में पुराने जमींदारों का ही नया, आधुनिक और अधिक हिंसक रूप हैं जो लोकतांत्रिक व्यवस्था का सहारा लेकर छोटे किसानों केचकों का शिकार कर रहे हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र रामरूप मास्टर एक साथ दो स्तरों पर जीता है- एक शिक्षक (बुद्धिजीवी) के रूप में और दूसरा एक किसान के रूप में। जब भी उसका किसान रूप शोषकों के विरुद्ध खड़ा होना चाहता है, उसका मध्य-वर्गीय बुद्धिजीवी रूप और उसका अकेलापन उसके आक्रोश की चिंगारी को क्रांति की आग बनने से पहले ही बुझा देता है। वह काली माई से बल माँगता है कि वह मुँहचोर न बने और डटकर शोषकों का मुकाबला करे- **"हे कालीमाई तू मुझे बल दे। आज रामरूप मुँहचोर नहीं बनेगा। आज हर बात का मुँह-तोड़ उत्तर देगा।"**[7] परंतु अंततः वह एक समझौता-वादी और मूक दर्शक की भूमिका में ही सिमट कर रह जाता है। इसके उपरांत भी वह अपने बेटे को एक सच्चे किसान के रूप में खेत में हल चलाते देखकर आत्मिक संतोष और गौरव का अनुभव करता है,जो कृषि-कर्म के प्रति उसकी अटूट आस्था का प्रमाण है।

'सोनामाटी' में कोइली का अंकन अत्यंत मर्मस्पर्शी और आधुनिक नारी-वादी संवेदना से युक्त है। हनुमान प्रसाद नामक एक वृद्ध बड़े किसान की लालसा और वासना की बलि चढ़ने की अपेक्षा, कोइली अपनी सारी इच्छाओं को मसलकर अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वहाँ से भाग खड़ी होती है। कोइली की यह पीड़ा और उसका यह

प्रतिरोधी संकल्प उसे पारंपरिक उपेक्षित नारी के दायरे से बहिर्गामी कर एक स्वाभिमानी सर्वहारा स्त्री के रूप में स्थापित करता है।

❖ नारी चिंतन : पारंपरिक सामंती बंधनों और लैंगिक पूर्वाग्रहों को प्रखर चुनौती

डॉ० विवेकी राय के साहित्य में नारी के अधिकारों और समाज में उनकी गरिमापूर्ण स्थिति को लेकर अत्यंत प्रगतिशील और क्रांतिकारी विचार व्यक्त किए गए हैं। उनका मानना है कि भारत के सर्वांगीण विकास के लिए समाज की आधी आबादी को शिक्षा और आत्मनिर्भरता के समान अवसर प्राप्त होने ही चाहिए। डॉ० राय लिखते हैं कि भारतीय समाज में पुरुषों की एकाधिकार शाही, घृणित सोच और स्त्रियों के प्रति पारंपरिक उपभोगता-वादी दृष्टि को चुनौती देना अब अनिवार्य हो गया है। ग्रामीण समाज में सदियों से स्त्रियों के शील संरक्षण के नाम पर पर्दा प्रथा और उन्हें घर की चारदीवारी (देहरी) के भीतर बलात अधिग्रहण के जो नियम बनाए गए थे, वे वास्तव में स्त्रियों को दासी बनाए रखने के षड्यंत्र थे। राय इस सामंती पुरुष-प्रधान मानसिकता पर प्रत्यक्ष प्रहार करते हैं- **"घर में तो उसे प्रतिष्ठित किया जाता है किंतु समाज में नहीं।"**[8] वे स्त्रियों को केवल घर की सजावट की वस्तु न मानकर समाज की मुख्य धारा में लाने की पक्षधरता करते हैं। डॉ०विवेकी राय के साहित्य में स्त्रियों के भीतर आ रहे वैचारिक बदलाव और उनके शिक्षित होने की प्रक्रिया के आरंभिक दिनों का अत्यंत सजीव चित्रण उपलब्ध होता है। वे दृढ़ता से प्रतिपादित करते हैं कि शिक्षा ही वह एकमात्र मार्ग है जो स्त्री को स्वाभिमानी और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना सकता है। वे इस बात से भी भली-भांति परिचित हैं कि स्त्रियों की यह आत्मनिर्भरता पुराने सामंत-वादी सामाजिक ढाँचे के लिए एक बड़ी चुनौती होगी, किन्तु व्यापक सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए ऐसी चुनौती दी जानी आवश्यक है। इस प्रकार उनका नारी-विमर्श केवल पश्चिमी बौद्धिकता का आयातित रूप नहीं है,बल्कि वह गँवार धरती की व्यावहारिक आवश्यकताओं से उपजा हुआ चेतना-स्वर और नए समाज का प्रस्थान-बिंदु है।

❖ भाषिक सौंदर्य-शास्त्र, शैलीगत वैविध्य और कलात्मक विधान

डॉ०विवेकी राय का संपूर्ण सृजन संसार अपनी भाषिक बनावट और अनूठी गद्य-शैलियों के कारण अत्यंत विशिष्ट है। वे भाषा के ऐसे सजग शिल्पकार हैं जो लोक-भाषा की मिट्टी से शब्दों को तराश कर गद्य की संरचना करते हैं। विवेकी राय ने अपनी भाषा को जीवंत बनाने के लिए ग्रामीण जीवन की बोलियों, लोकोक्तियों, मुहावरों और यहाँ तक कि गालियों और व्यंग्य-वचनों का प्रचुर प्रयोग किया है। उनकी भाषा में एक विशिष्ट पद-रचनादृष्टिगत होती है। उन्होंने भाषा को गतिशील और संवेद्य बनाने के लिए ध्वनि-साम्य और युग्म-शब्दों का कलात्मक उपयोग किया है,जैसे- **"घंटी की टुन-टुन-टुन-'टुन ध्वनि', 'यों-पों, तांगे की खटर-खटर', 'अब्बर-दुब्बर','झबर-झबर','दुःख-दैन्य ' और 'अवसाद-विषाद'।"**[9] वे पात्रों और परिवेश के अनुकूल नामकरण करने के साथ-साथ भाषाई रूप से अत्यंत उदार भी हैं। जहाँ एक ओर वे विशुद्ध देहाती शब्दों- कपार, खुराफात का प्रयोग करते हैं, वहीं प्रसंगानुसार संस्कृत, अंग्रेजी और फारसी के शब्दों को भी अपनी शैली में सहजता से घुला-मिला देते हैं, जैसे- **"को हि नाम संकल्पो धीमताम् यो न सिध्यति।','नेतायनमः'और 'रूल्ड'।"**[10]

❖ शैलीगत वैविध्य : गद्य की विभिन्न विधाओं का समावेशन

डॉ०विवेकी राय ने हिंदी और भोजपुरी कहानी-शिल्प में प्रथम बार ललित निबंधों के विशिष्ट लालित्य और गद्य की विभिन्न शैलियों का अभिनव प्रयोग किया है :-

- **डायरी शैली-** यह शैली अत्यंत वैयक्तिक और अंतरंग अनुभवों को प्रकट करने का सर्वोत्तम साधन है। राय ने अपने कहानी संग्रह 'नई कोयल' की अधिकांश कहानियों में डायरी शैली का प्रयोग किया है, क्योंकि ये कहानियाँ उनके प्रसिद्ध अखबार स्तंभ 'मनबोध मास्टर की डायरी' के अंतर्गत लिखी गई थीं। **'एक दिन रेल हमारी'** और **'और खिड़की बंद हो गयी'** इसके बेजोड़ उदाहरण हैं।
- **रिपोर्ताज और संस्मरण शैली-** गाजीपुर और बलिया क्षेत्र में आने वाली प्रलयंकारी बाढ़ की विभीषिका और मानवीय त्रासदी को चित्रित करने के लिए उन्होंने 'गूँगा जहाज' संग्रह की कहानी **'बाढ़ की यमदाढ़'** में रिपोर्ताज शैली का प्रयोग किया है। इसी कहानी के उत्तरार्ध में जब वे बीते समय का स्मरण करते हैं, तो संस्मरण शैली का सुंदर पुट दिखाई देता है।
- **संवाद शैली-** डॉ०विवेकी राय के संवाद अत्यंत चुस्त, संक्षिप्त और पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुकूल होते हैं। जब पात्र परस्पर वार्तालाप करते हैं, तो वे खड़ी बोली हिंदी से सीधे देशज भोजपुरी मिश्रित हिंदी पर आ जाते हैं, जो संवादों में स्वाभाविकता और नाटकीयता ला देता है।

❖ डॉ०विवेकी राय के लघु कथा संसार का समाज-शास्त्रीय विश्लेषण

डॉ०विवेकी राय का लघु कथा संसार भी उनके उपन्यासों की ही भांति अत्यंत विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। उनके विभिन्न कहानी-संग्रहों का विश्लेषण ग्रामीण यथार्थ के बदलते समीकरणों को समझने में सहायक है :-

➢ 'जीवन परिधि' : प्रथम कहानी-संग्रह और वैचारिक स्थापनाएँ

डॉ०विवेकी राय का पहला कहानी-संग्रह 'जीवन परिधि' मनुष्य के जीवन-चक्र और उसकी नियति के अंतहीन भंवर को दर्शाता है। इसके अंतर्गत संकलित उनकी पहली ऐतिहासिक कहानी 'पाकिस्तानी' (1945) मजहबी उन्माद पर सच्ची देशभक्ति और धर्मनिरपेक्ष मानवीय मूल्यों की विजय की कहानी है। यह कहानी किसी बाहरी घटना-शीलता पर आधारित न होकर पात्रों के आंतरिक मानसिक ऊहापोह और वैचारिक द्वंद्व को गहरे ढंग से प्रस्तुत करती है।इसी संग्रह में संकलित उनकी लंबी कहानी 'लाटरी के रुपए' एक मध्यम-वर्गीय स्कूल अध्यापक की उस मानसिक उद्विग्नता और दिवास्वप्न का चित्रण करती है,जिसे अचानक लाटरी के दस हजार रुपए प्राप्त होने की मिथ्यासूचना मिलती है। वह घर बनवाने से लेकर चुनाव लड़ने तक के हवाई मनसूबे बाँध लेता है, परन्तु अंत में जब लाटरी न निकलने का सच सामने आता है,तो वह गहरे अवसाद में डूब जाता है। यह कहानी पूंजीवादी आधुनिकता द्वारा ग्रामीण मध्य-वर्ग में उत्पन्न होने वाली निरर्थक महत्वाकांक्षाओं पर तीखा व्यंग्य है।

➢ 'सर्कस' : ग्रामीण मूल्यों के क्षरण का दस्तावेज

डॉ०विवेकी राय का विशिष्ट कहानी-संग्रह 'सर्कस' ग्रामीण विकास के नाम पर प्रचारित अंधियारे और नैतिक मूल्यों के पतन को उजागर करता है। वे दिखाते हैं कि किस प्रकार आधुनिकता के प्रभाव से गाँवों के भीतर शोषण के नए-नए विष वृक्ष उग आए हैं। जिन पारंपरिक नैतिक मर्यादाओं और मानवीय मान्यताओं पर समूचा ग्रामीण समाज टिका हुआ था,वे अब पूर्णतः तार-तार हो चुकी हैं। सम्पूर्ण गाँव अब एक ऐसे सर्कस में परिवर्तित हो गया है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी पहचान खोकर केवल तमाशा दिखाने और पेट भरने के संघर्ष में अंधा होकर दूसरों से टकरा रहा है।

➢ **'जीवित शव का अतीत' :मिट्टी के प्रति अटूट प्रेम**

इस अत्यंत मार्मिक कहानी में डॉ०विवेकी राय ने शहरी चकाचौंध की तुलना में ग्रामीण मनुष्यों के अपनी धरती (माटी) के प्रति अगाध और जैविक प्रेम को चित्रित किया है। कहानी का नायक अपनी धरती को केवल बेजान मिट्टी का टुकड़ा नहीं मानता, बल्कि उसे अपनी साक्षात् माँ स्वीकार करता है। वह पूरी निष्ठा के साथ दिन-रात अपनी धरती माँ की सेवा करता है और उसमें से सोना उगाने की क्षमता रखता है। उसके अनुसार- **"धरती बड़ा सुख देती है। जब छूता हूँ, तो उसमें सोने की सुंदरता, चाँद की चरक और कस्तूरी की सुगन्ध आती है।"**[11] यह कहानी आधुनिक औद्योगिक विकास के उस हिंसक रूप को चुनौती देती है जो मनुष्य को उसकी उपजाऊ जमीन और जड़ों से बेदखल कर उसे 'जीवित शव' बना रहा है।

➢ **'समस्या : एक दो की नहीं' : लोकतांत्रिक विफलता और दरिद्रता का विलाप**

इस कहानी के माध्यम से डॉ० राय स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जनतंत्र के उस खोखलेपन पर प्रहार करते हैं जिसने निर्धन किसानों को और अधिक दरिद्र तथा साधनहीन बना दिया है। दो जून की रोटी के लिए तरसने वाला कृषक जब अपनी ही भूमि को वापस पाने के लिए भ्रष्ट प्रशासनिक वर्गों और नए साहूकारों के पास जाता है, तो उससे पैसों की माँग की जाती है। आर्थिक विपन्नता के कारण वह अपनी भूमि से सदा के लिए हाथ धो बैठता है और निराश मन से घर लौट आता है। वास्तव में यहाँ डॉ०विवेकी राय दिखाते हैं कि किस प्रकार विकास की योजनाएँ केवल धनाढ्य वर्ग का पेट भर रही हैं और निर्धन जनमानस आज भी मूलभूत सुविधाओं से वंचित है।

➢ **'नन्हें अत्याचारी दोस्त की कहानी' :एकाकीपन और सह-अस्तित्व का दर्शन**

यह एक अत्यंत दार्शनिक और आत्मीय कहानी है जो आधुनिक मनुष्य के गहरे अकेलेपन की समस्या को उठाती है। कहानी का लेखक घर में चूहों के उपद्रव और उनकी धमाचौकड़ी से परेशान होकर उन्हें भगाने के अनेक जतन (यज्ञ) करता है। किन्तु जब चूहे घर छोड़कर चले जाते हैं, तो लेखक को अपना सारा घर भयानक रूप से सूना और डरावना लगने लगता है। वह चूहों की रिक्तता अनुभव करता है और उनके वापस लौटते ही पुनः प्रसन्न हो जाता है। यह कहानी संकेत करती है कि आधुनिक महानगरीय और व्यक्ति-वादी जीवन-शैली ने मनुष्य को इतना अकेला कर दिया है कि वह अपने सह-अस्तित्व के लिए उन जीवों के उपद्रव को भी प्यार करने लगता है जिन्हें समाज मूलतः 'अत्याचारी' अथवा उपद्रवी मानता है।

❖ **उपसंहार : लोक-धर्मी मूल्यों की प्रासंगिकता और कालजयी विरासत**

डॉ० विवेकी राय और उनका विपुल गद्य साहित्य वास्तव में भारतीय समाज को उसकी जड़ों की ओर लौटने का एक आत्मीय आमंत्रण है। परंपरा, आधुनिकता और लोक-चेतना का जो द्वंद्व उनकी रचनाओं में दिखाई देता है, वह हमें किसी पीछे हटने वाली प्रतिक्रियावादी सोच की ओर नहीं ले जाता, बल्कि एक ऐसी संतुलित दृष्टि देता है जिसमें हमारी अपनी माटी का स्वाभिमान भी सुरक्षित रहे और हम ज्ञान-विज्ञान के नए आलोक को भी ग्रहण कर सकें। डॉ०विवेकी राय ने भोजपुरी और आंचलिक हिंदी साहित्य को जो भाषा, शिल्प और गरिमा प्रदान की,उसने समूचे देश का ध्यान ग्रामीण अंचलों की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि लोक-भाषा में भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के गंभीर विषयों (जैसे युद्ध, शिक्षा और अस्तित्व-वादी अकेलापन) को अत्यंत सशक्त ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। आज जब समग्र दुनिया कंक्रीट के जंगलों, जलवायु संकट और अंधी उपभोक्ता-वादी आधुनिकता के दुष्चक्र में फँसकर छटपटा रही है, तब डॉ० विवेकी राय का 'गँवई गंध गुलाब' और लोक-धर्मी आस्तिकता का

दर्शन हमें प्रकृति, सह-अस्तित्व और सामूहिक मानवीय संवेदना की रक्षा करने का अचूक मार्ग दिखाता है। इस प्रकार उनका साहित्य और उनकी लोक-चेतना का यह रचनात्मक द्वंद्व समकालीन समय और भविष्य की पीढ़ियों के लिए सदैव एक मार्गदर्शक प्रकाश-स्तंभ बना रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उपाध्याय, डॉ०कृष्णदेव : भोजपुरी और उसका साहित्य, पृष्ठ 15-16,प्रकाशन- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1957 ई०
2. 'पीड़ित', हुसैन डॉ०तैयब : भोजपुरी साहित्य के संक्षिप्त रूपरेखा, पृष्ठ 30,प्रकाशन- शब्द संसार, पटना, संस्करण- 2004 ई०
3. पूर्ववत, पृष्ठ 25
4. भस्मे,दिलीप मारुती : विवेकी राय के साहित्य में ग्रामंचालिक जन-जीवन का चित्रण, पृष्ठ 137, शोध प्रबंध- नवंबर 2001 ई०, शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर, महाराष्ट्र
5. पूर्ववत, पृष्ठ 319
6. सी.आर., राजीमोल: विवेकी राय के उपन्यासों में आंचलिकता, पृष्ठ 83, शोध प्रबंध- 2011 ई०, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्यम
7. राय, डॉ० विवेकी : सोनामाटी, पृष्ठ 66, प्रकाशन- प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1983 ई०
8. भस्मे, दिलीप मारुती : विवेकी राय के साहित्य में ग्रामंचालिक जन-जीवन का चित्रण, पृष्ठ 209, शोध प्रबंध- नवंबर 2001 ई०, शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर, महाराष्ट्र
9. सी.आर., राजीमोल : विवेकी राय के उपन्यासों में आंचलिकता, पृष्ठ 150, शोध प्रबंध- 2011 ई०, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्यम
10. पूर्ववत, पृष्ठ 151
11. पाल, रवि : डॉ० विवेकी राय के कथा साहित्य की रचना प्रक्रिया के विविध आयाम, पृष्ठ 49, शोध प्रबंध- 2022 ई०, नेहरू ग्रामभारती मानित विश्वविद्यालयप्रयागराज

◂◂ ▸▸

भारतीय ज्ञान प्रणाली में भाषा का महत्त्व

निशान्त कुमार शुक्ल*

भारतीय ज्ञान प्रणाली भारत की समृद्ध बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत है । इसमें विज्ञान, गणित, दर्शन, कला और साहित्य पर व्यापक विचार मिलता है । इस ज्ञान श्रृंखला की आधारशिला भाषा पर स्थापित है । संपूर्ण भारतीय ज्ञान विज्ञान की अभिव्यक्ति भारतीय भाषाओं के माध्यम से हुई है । ज्ञान की विविध शाखों में अन्यतम भाषा तत्व पर भारतीय मनीषियों ने सूक्ष्म एवं गंभीर चिन्तन किया है । मनुष्य, अपने भावों को सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए भाषा को ही साधन बनाता है । भाषा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। उसके विषय में विस्तृत जानकारी प्रत्येक मानव के लिए अनिवार्य है। अतएव आचार्य पतंजलि ने षडङ्गयुक्त वेद के अध्ययन की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा है कि ब्राह्मण को निष्काम भाव से षडङ्ग वेद का अध्ययन करना चाहिए।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।[1]

भाषा शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से इस अर्थ की पुष्टि होती है। भाषा शब्द संस्कृत की भ्वादिगणी भाष् धातु से निष्पन्न है। भाष् धातु का अर्थ है- भाष् व्यक्तायां वाचि व्यक्त वाणी। 'भाष्यते व्यक्तवाग् रूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा', अर्थात् व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे 'भाषा' कहते हैं। मुख्य रूप में भाषा शब्द से मानवीय व्यक्त वाणी का ग्रहण होता है, क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जा सकता है। भाषा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। भाषा के द्वारा ध्वनियों, वर्णों, प्रकृति, प्रत्यय और अर्थ का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। जिससे शुद्ध अर्थ का बोध होता है; उच्चारण की शुद्धता आती है और भाषा के परिष्कृत रूप के साथ यात्रा का साक्षात्कार होता है। एक प्राचीन श्रुति का यह कथन सत्य है कि महाभाष्य में कैयट द्वारा उद्धृत-

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ।[2]

भारतीय विचारकों ने भाषा को मानव शरीर में दैवी अंश माना है, जो इस सृष्टि में केवल मनुष्य मात्र को प्राप्त है । ऋग्वेद के दशम मंडल के वाक् सूक्त में इस विषय पर निर्देश किया गया है की वाक् तत्त्व या भाषा ही वह दिव्य ज्योति है जो मानव को ऋषि या विद्वान् बनाती है ।

अहमेव स्वयमिदं वदानि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।[3]

वैदिक ऋषियों ने वाक् तत्त्व के विश्लेषण को ऋक् मनस्तत्त्व के विश्लेषण को यजुस् और प्राण-तत्व के विश्लेषण को साम नाम दिया -

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये सामं प्राणं प्र पद्ये ।[4]

महर्षि पतञ्जलि के द्वारा महाभाष्य के पश्पशाह्निक में अनेक स्थलों पर भाषा-सम्बन्धी सूत्र उपस्थापित किए गए हैं। भारतीय ऋषियों के समस्त शास्त्रीय-चिन्तन वेदमूलक हैं अतः वेदपुरुष के षड् अंगों की कल्पना की गई । इसके अन्तर्गत शिक्षा, निरुक्त, छन्द, व्याकरण, ज्योतिष और कल्प की रचना हुई । इनमें से शिक्षा, निरुक्त, छन्द और व्याकरण का साक्षात् सम्बन्ध भाषा-शास्त्र से है । शिक्षा का सम्बन्ध ध्वनि-विज्ञान से है । निरुक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति का निरूपण है। छन्द में छन्दों की पाद-व्यवस्था और प्रत्येक पाद में वर्णों और मात्राओं की निश्चित संख्या का वर्णन मिलता है और व्याकरण में पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान का समन्वय है इन चार वेदाङ्गों में भाषा के आरम्भिक स्वरूप का दर्शन मिलता है । आइए क्रमशः इन चारों वेदाङ्गो में निरूपित भाषा तत्व की समीक्षा करते हैं ।

* शोधच्छात्र, महाराजा सुहेल देव विश्वविद्यालय, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा- वर्तमान काल में प्रचलित ध्वनि-विज्ञान का ही प्राचीन रूप 'शिक्षा' है । शिक्षा से अभिप्राय है स्वर और व्यंजन वर्णों के उच्चारण की शिक्षा देना । आचार्य सायण ने कहा है जिस शास्त्र में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम तथा सन्तान- इन छः विषयों का उपदेश हो उसे 'शिक्षा' कहते हैं

'वर्णस्वरादयुच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा'[5]

इन छहों विषयों का निर्देश तैत्तिरीयोपनिषद् में किया गया है- **वर्णः स्वरः मात्रा बलं साम सन्तानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।**[6]

वर्ण अकारादि अक्षरों को कहते हैं जो स्वर तथा व्यञ्जन के रूप में दो प्रकार के हैं। इनका पुनर्विभाजन उच्चारण-स्थान, प्रयत्न आदि के आधार पर किया गया है। पाणिनीय शिक्षा में शम्भु के मत से 63-64 वर्णों का उल्लेख है। इनमें इक्कीस स्वर, पच्चीस स्पर्शवर्ण (क् से म् तक), चार अन्तःस्थ, चार ऊष्म, चार यम, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तथा दो स्वरों के बीच का ल्-ये 63 वर्ण हैं। प्लुत लृ को मिलाने से यह संख्या 64 होती है।

स्वर का अभिप्राय स्वराघात (Accent) है जो संख्या में तीन हैं-उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। स्वरभेद से अर्थभेद होता है। पाणिनीय शिक्षाकार ने निषाद, गान्धार, ऋषभ आदि सप्त-स्वरों का भी उदातृत आदि में विभाजन किया है । स्वरों के उच्चारण को संहिताओं तथा कुछ ब्राह्मण-ग्रन्थों में अङ्कित किया गया है।

मात्रा स्वर वर्णों के उच्चारण में लगने वाले काल को कहते हैं। इसके तीन भेद हैं- ह्रस्व (एकमात्रा), दीर्घ (द्विमात्रा) तथा प्लुत (त्रिमात्रा)। ये मात्राएँ स्वरों (vowels) में ही होती हैं। व्यञ्जनों की अर्धमात्रा मानी गयी है (व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्)।

बल वर्णों के उच्चारण स्थान तथा उच्चारण में लगने वाले प्रयत्न को कहा जाता है (बलं स्थानप्रयत्नौ)। वर्णों के उच्चारण में श्वास-नली से आने वाली वायु मुख में जहां अवरुद्ध होती है, उसको उन वर्णों का स्थान कहा जाता है ।

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार कण्ठ, उरस्, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका और जिह्वामूल- ये आठ वर्णोच्चारण के स्थान हैं। प्रयत्न दो प्रकार के हैं- आभ्यन्तर तथा बाह्य। उच्चारणस्थानों के भीतर होने वाले प्रयत्न 'आभ्यन्तर' हैं जबकि मुख-विवर की सीमा से बाहर होने वाले प्रयत्न 'बाह्य' है। दोनों प्रयत्न क्रमशः चार और ग्यारह हैं।

साम (या सामन्) का अर्थ है निर्दोष गुणयुक्त उच्चारण। उच्चारण में छः दोष होते हैं-गीतयुक्त, शीघ्रता सहित, सिर हिलाकर पढ़ना, यथालिखित (शुद्धाशुद्धि के विचार से रहित) उच्चारण, अर्थ न जानना, अल्पकण्ठता।

गीती शीघ्री शिरःकम्पी यथालिखितपाठकः ।
अनर्थोज्ञल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।।[7]

इसी प्रकार पाठ के छः गुण हैं- माधुर्य, अक्षर व्यक्ति, पदच्छेद, सुस्वर, धैर्य एवं लयसमर्थ।

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थञ्च षडेते पाठकाः गुणाः ।।[8]

इसके अन्तर्गत उच्चारण-प्रकार का विस्तृत विवेचन है।

सन्तान, सन्धि या संहिता के नियमों के साथ वर्णोच्चारण को कहते हैं। पदों के सान्निध्य या संहिता को सन्तान कहते हैं ।

वेदमन्त्रों का मूल उच्चारण संहिता-पाठ है किन्तु उसके मूल में 'पद' ही है । इन पदों का निकटतम आ जाना ही संहिता है।

शिक्षा के नाम से जो पाणिनीय शिक्षा आदि ग्रन्थ मिलते हैं वे बहुत बाद के हैं। इस वेदाङ्ग के प्राचीनतम ग्रन्थ 'प्रातिशाख्य' हैं जो पाणिनि से पहले के हैं। वेदों की प्रत्येक शाखा के उच्चारण की प्रक्रिया को पृथक् पृथक बतलाने के कारण ये प्रातिशाख्य कहलाते हैं (शाखां शाखां प्रति प्रतिशाखम्। प्रतिशाखं भवम् प्रातिशाख्यम्) । व्याकरण के इतिहास में भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋक्प्रातिशाख्य, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, सामप्रातिशाख्य, अथर्वप्रातिशाख्य आदि प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं । ये ग्रन्थ ध्वनिविज्ञान की प्राचीनता के परिचायक हैं ।

निरुक्त- शब्दों का निर्वचन अर्थात् अर्थ का निर्णय करने वाला वेदाङ्ग 'निरुक्त' (निस्+वच्+क्त) है। निरुक्त से अभिप्राय है शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय का विवेचन करना। इस प्रकार निरुक्त निर्वचन-शास्त्र और व्युत्पत्ति-शास्त्र है। व्युत्पत्ति में एक ओर धातु या प्रकृति है, दूसरी ओर प्रत्यय। इसको दूसरे शब्दों में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व कह सकते हैं। पद-विज्ञान के अर्थतत्त्व और सम्बन्ध-तत्त्वों का प्रारम्भिक विवेचन निरुक्त में मिलता है। निरुक्त की परिभाषा में इसके पाँच प्रतिपाद्य विषय बताए गए हैं (1) वर्णागम, (2) वर्ण-विपर्यय, (3) वर्ण-विकार, (4) वर्ण-नाश, (5) धातुओं का अर्थ-विस्तार ।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ । धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ।।9

उपर्युक्त 5 विषयों में भाषा के 3 तत्त्वों का समावेश है- ध्वनि, पद और अर्थ ।

सम्प्रति एकमात्र यास्क रचित निरुक्त उपलब्ध होता है जो वैदिक शब्दों के एक पञ्च अध्यायों वाला संग्रह 'निघण्टु' की व्याख्या है।

छन्द- वेदों के अधिकांश मन्त्र पद्य में हैं। प्राचीन काल में लेखन सामग्री के अभाव में श्रुति को स्मृति परम्परा से ही रचनाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमण करती थीं। स्मृति की दृष्टि से गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक अनुकूल था। पद्यात्मक मन्त्रों के सही उच्चारण, समुचित स्थान पर विराम इत्यादि के लिए छन्द (छन्दस्) का ज्ञान अनिवार्य है। वैदिक छन्दों में अक्षरों की गणना होती है। नियत अक्षरों (स्वर-वर्णों) से पाद बनते हैं। एक मन्त्र का आन्तरिक विभाजन पादों में ही होता है।

'छन्दस्' (छद् धातु+असुन् प्रत्यय) शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- आच्छादित करने वाला या स्तुति का साधन।

आचार्य यास्क ने निरुक्त में छन्दस् का निर्वचन दिया है । 'छन्दांसि छादनात्'

अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके उसे समष्टिरूप प्रदान करता है। इसके कारण छन्द गेय और सुपाठ्य हो जाता है। इस प्रकार यह वेदाङ्ग वेद का आवरण है. स्तुति का साधन है। कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में छन्द का लक्षण दिया गया है- यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः ।[10]

वैदिक छन्द जैसे गायत्री (24 वर्ण), उष्णिक् (28 वर्ण), अनुष्टुप (32 वर्ण), बृहती (36 वर्ण), पंक्ति (40 वर्ण), त्रिष्टुप (44 वर्ण), जगती (48 वर्ण) आदि।

सम्प्रति इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि-ग्रन्थ पिङ्गल ऋषि का छन्दःसूत्र है जिसमें वैदिक छन्दों के साथ लौकिक छन्दों पर विस्तृत व्याख्या मिलती है ।

लौकिक छन्द जैसे आर्या, गीति, वंशस्थ, दोधक, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, वियोगिनी, शालिनी, मालिनी, हरिणी, पुष्पिताग्रा आदि ।

व्याकरण- मूलतः वैदिक भाषा के पदों की रचना (व्युत्पत्ति) को स्पष्ट करने के लिए इस वेदाङ्ग का विकास हुआ था जो क्रमशः लौकिक संस्कृत की परिधि में आकर एक महत्त्वपूर्ण शास्त्र बन गया। यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र द्वारा वाक् को व्याकृत (व्युत्पन्न, विभाजित) किये जाने का आख्यान है, इसीलिए परम्परा से इन्द्र को प्रथम वैयाकरण कहा जाता है। यद्यपि अभी वैदिक भाषा का अनन्य रूप से विवेचन करने वाला कोई स्वतन्त्र व्याकरण-ग्रन्थ नहीं मिलता, तथापि संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थों में शब्द-विश्लेषण के अनेक संकेत मिलते हैं व्याकरण के पाँच प्रमुख उद्देश्य कहे गये हैं- वेदों की रक्षा (वेदों के मूल पदों को समझना), ऊह (यज्ञ में, आवश्यकतानुसार प्रकृति रूप में पठित पदों का विकृति पाठ करना), आगम (प्राचीन उद्धरणों से व्याकरण का महत्त्व समझना), लघु (भाषा-शिक्षा के लिए लघुतम साधन होना) तथा असन्देह (किसी स्थल-विशेष में भाषागत सन्देह का निराकरण)। पतञ्जलि ने इनके अतिरिक्त वैदिक उद्धरणों के आधार पर व्याकरण की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है ।

महर्षि पाणिनि विश्व के सबसे बडे वैयाकरण हैं । भाषा-शास्त्र के इतिहास में इनका सर्वोच्च स्थान है ।

अष्टाध्यायी, महर्षि पाणिनि की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें लौकिक संस्कृत के साथ ही वैदिक व्याकरण भी दिया गया है। यह सूत्र-पद्धति से लिखा गया है। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः ग्रन्थ का नाम 'अष्टाध्यायी' पड़ा। इसमें सूत्रों की

संख्या 3997 है। इसके विभिन्न अध्यायों में इन विषयों का विवेचन है संधि, कारक, कृत् और तद्धित प्रत्यय, समास, सुबन्त और तिङन्त प्रकरण, प्रक्रियाएँ, परिभाषाएँ, द्विरुक्त आदि कार्य तथा स्वर-प्रक्रिया।

इसके अतिरिक्त पाणिनि की अन्य रचनाएँ ये मानी जाती हैं (1) धातु-पाठ, (2) गणपाठ, (3) उणादिसूत्र, (4) लिंगानुशासन। ये चारों अष्टाध्यायी के परिशिष्ट के रूप में हैं। (5) पाणिनीय शिक्षा ।

महर्षि पाणिनि के महत्त्वपूर्ण अवदान :-

माहेश्वर सूत्र - 14 माहेश्वर सूत्रों में संस्कृत की पूरी वर्णमाला है । इसमें क्रम है- स्वर, अन्तस्थ, पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम स्पर्श वर्ण, ऊष्म ध्वनियाँ। ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से यह क्रम वैज्ञानिक है।

प्रत्याहार-14 सूत्रों से अनेक प्रत्याहार बनते हैं। प्रत्याहार का अर्थ है-संक्षेप करने की विधि। इसके द्वारा प्रारम्भिक और अन्तिम संकेत लेने से बीच के वर्णों या प्रत्ययों आदि का संग्रह हो जाता है। जैसे-अच् स्वर, अ से च् तक। हल् = व्यंजन, ह से ल् तक। संक्षेप की यह विधि अत्यन्त उपादेय मानी गई है।

सन्धि-नियम इनके द्वारा ध्वनि-विज्ञान के वर्ण-परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्तों का विशद ज्ञान होता है।

पदविज्ञान- अंगाधिकार प्रकरण में प्रकृति और प्रत्यय का सूक्ष्म विवेचन है। सुबन्त और तिङन्त रूपों में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का विशद विश्लेषण है।

पदविभाजन-पाणिनि ने पदों का दो भागों में विभाजन किया है सुबन्त और तिङन्त। विश्व में पदों के जितने भी विभाजन हुए हैं, उनमें यह सबसे अधिक वैज्ञानिक है। यास्क ने पद के चार भेद माने थे और पश्चिमी विद्वान् पद के 8 भेद मानते हैं। पाश्चात्य विभाजन पाणिनि के समक्ष बहुत हीन सिद्ध होता है।

ध्वनियों का स्थान और प्रयत्न के अनुसार वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है। यह ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

सभी शब्दों का आधार 'धातु' को माना है। उससे ही उपसर्ग या प्रत्यय लगने पर शब्द बनते हैं ।

अर्थविज्ञान-कृत् और तद्धित प्रकरण तथा प्रक्रियाओं आदि में प्रत्येक प्रत्यय का अर्थ बताकर अर्थविज्ञान का आधार तैयार किया है।

पाणिनि के परवर्ती वैयाकरणों में कात्यायन का स्थान प्रथम है। कात्यायन ने अष्टाध्यायी के सूत्रों पर वार्तिकों की रचना की है। अष्टाध्यायी के सूत्रों में आवश्यक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन के लिए कात्यायन ने जो नियम बनाए हैं, उन्हें वार्तिक कहते हैं। वार्तिक का लक्षण है-

उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकम्।[11]

इसमें उक्त का अर्थ है- वर्णित नियमों के अपवाद नियमों का वर्णन, अनुक्त छूटे हुए नियमों का उल्लेख, दुरुक्त-भूलचूक का सुधार। इससे ज्ञात होता है कि कात्यायन ने पाणिनि के सूत्रों से छूटे हुए नियमों का उल्लेख किया है, अपवादों का वर्णन किया है और भूलचूक का सुधार किया है ।

पाणिनीय व्याकरण में मुनित्रय का उल्लेख है। इसमें तीन मुनि आते हैं-पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि। इनमें भी पूर्व की अपेक्षा बाद वाला आचार्य अधिक प्रामाणिक है। 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्'। पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी और कात्यायन के वार्तिकों का आश्रय लेते हुए अष्टाध्यायी पर महाभाष्य नाम की सर्वांगीण व्याख्या की है। भाषा की सरलता, विशदता, स्वाभाविकता और विषय प्रतिपादन की उत्कृष्ट शैली के कारण महाभाष्य सारे संस्कृत वाङ्मय में आदर्श ग्रन्थ है। व्याकरण के दार्शनिक तत्त्वों को भी सरल और सुबोध भाषा में समझाया गया है। यह व्याकरण का ही ग्रन्थ न होकर एक विश्वकोष है। इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथ्यों का भण्डार है। इसमें भाषाशास्त्र के सभी पक्षों पर विशद चिन्तन हुआ है।

वैयाकरणों के अतिरिक्त साहित्यशास्त्रियों, नैयायिकों और मीमांसकों ने अपने शास्त्रों में शब्द-अर्थ, शब्द-अर्थ-संबन्ध-विचार, शब्द-शक्ति, अर्थबोध की प्रक्रिया, अर्थ-निर्णय के साधन, अर्थ-भेद के कारण, पदों और वाक्यों के प्रकार एवं

उनके अर्थों का विवेचन, अर्थ-विकास के प्रकार और उनके कारण आदि विषयों पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। ये विवेचन इन शास्त्रों में प्रसंग के अनुसार प्राप्त होते हैं। भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं-

साहित्य में (1) आनन्दवर्धन-कृत ध्वन्यालोक, (2) मम्मटकृत काव्यप्रकाश, (3) विश्वनाथ-कृत साहित्यदर्पण', (4) जगन्नाथ-कृत रसगंगाधर, (5) दण्डी-कृत काव्यादर्श, (6) वामन-कृत काव्यालंकारसूत्र, (7) राजशेखर-कृत काव्यमीमांसा, (8) राजानकमहिमभट्ट-कृत व्यक्ति-विवेक, (9) भोज-कृत सरस्वती-कण्ठाभरण, (10) अप्पयदीक्षित-कृत कुवलयानन्द आदि ।

न्यायशास्त्र में (1) न्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्य (2) विश्वनाथ-कृत

न्यायसिद्धान्त-मुक्तावलि, (3) जयन्त भट्ट-कृत न्याय-मंजरी (4) उदयनाचार्य-कृत 'न्यायकुसुमांजलि', (5) उद्योतकर-कृत न्याय-वार्तिक (6) वाचस्पति मित्र-कृत न्यायवार्तिक-तात्पर्य-टीका, (7) गंगेश-कृत तत्त्वचिन्तामणि, (8) रघुनाथ-शिरोमणि-कृत दीधिति (9) गदाधर भट्ट-कृत शक्तिवाद, व्युत्पत्तिवाद, पदवाक्यरत्नाकर । इनके अतिरिक्त बौद्ध और जैन दार्शनिक भी हैं।

मीमांसाशास्त्र के मीमांसकों ने शब्द का स्वरूप, शब्दार्थ, वाक्य और वाक्यार्थ आदि पर विशेष विचार किया है। इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं (1) मीमांसादर्शन पर शाबरभाष्य, (2) कुमारिलभट्ट-कृत 'श्लोक-वार्तिक' और 'तंत्रवार्तिक', टुप्टीका (3) प्रभाकर मिश्र-कृत मीमांसा-भाष्य पर बृहती टीका ।

इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में भाषा- तत्त्व पर व्यापक एवं सूक्ष्म विचार हुआ है । वस्तुतः भाषा ही संसार की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है, जो मानव के हृदय के अन्धकार को दूर करती है । आचार्य दण्डी ने भाषा की इस प्रकाशशीलता को ध्यान में रखते हुए कहा है कि यदि शब्दरूपी ज्योति संसार में न जलती तो संसार में चारों ओर अँधेरा ही रहता।

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।।[12]

सन्दर्भ सूची -

1- व्या. महाभाष्य आह्निक-1
2- व्या. महाभाष्य-प्रदीप आह्निक-1
3- ऋग्वेद 10.125.5
4- यजुर्वेद 36.1
5- ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ०39
6- तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली 1.2
7- पाणिनीयशिक्षा, का.32
8- पाणिनीयशिक्षा, का. 33
9- निरुक्तम् 7.12
10- सर्वानुक्रमणी 12.6
11- काव्यमीमांसा, पृ० 5
12- काव्यादर्शः 1.4

ग्रामीण स्वास्थ्य संस्कृति के परिवर्तित प्रतिमानों का स्वरूप

धीरेन्द्र कुमार गुप्ता*

सम्पूर्ण देखभाल की प्रणाली के रूप में सर्वप्रथम प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद का उद्‌भव वैदिक साहित्य में समाहित स्वास्थ्य और चिकित्सा के ज्ञान से हुआ आयुर्वेद के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि इसका उदय तथा ज्ञान लगभग 5000 वर्ष पूर्व अथर्ववेद में माना जाता है। आयुर्वेद की पद्धति यद्यपि औषधियों पर आधारित रही है किन्तु इसका मूल सूत्र धार्मिक श्लोकों के माध्यम से रचा गया है। इन्हीं धार्मिक श्लोकों का अनुसरण करते हुए प्राकृति चिकित्सा के प्रभावी पद्धति के रूप में विश्वास चिकित्सा की प्रणाली को लिया गया है। यह प्रणाली तन्त्र-मन्त्र और अनुष्ठान पर आधारित एक धार्मिक क्रिया-कलाप के प्रणाली के रूप में माना जाता है। इसके एक क्रिया **'योग'** को संशोधित करके आधुनिक चिकित्सा पद्धति में स्वीकार कर लिया है और वह इसे भौतिक तथा मानसिक समस्याओं के निराकरण के सूत्र के रूप में प्रयोग कर रहा है किन्तु आधुनिक चिकित्सा प्रणाली योग को विश्वास चिकित्सा का अंग नहीं मानती है। आयुर्वेद हो या आधुनिक चिकित्सा प्रणाली यह भी विश्वास चिकित्सा प्रणाली के मूल पक्ष **संयम एवं विश्वास** पर आधारित माने जाते हैं। मानव सभ्यता के आरम्भ से लेकर अब तक प्राकृतिक शक्तियों एवं प्रभावों के प्रति व्यक्ति जिज्ञासु और श्रद्धानवत रहा है। वह प्रकृति को ही उत्थान और पतन का एक अंग मानता है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो विश्वास चिकित्सा प्रणाली प्राकृतिक नियमों के प्रति आस्था और विश्वास के रूप में दिखलाई देता है। इसलिए इसकी उत्पत्ति मानव विकास के साथ ही साथ हुई है।

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत के ग्रामीण समाज में स्वास्थ्य के प्रति गहरी चेतना नहीं थी। इसका कारण था कि स्वास्थ्य और संस्कृति प्रायः एक-दूसरे से दूर थे। ग्रामीण जन छोटी-छोटी बीमारियों को लेकर भी अन्धविश्वास और प्राकृतिवाद से सम्बध थे। वह बीमारी को बीमारी न समझकर दैवीय आपदा और जीव संकट मानते थे। इसका मूल कारण था कि समाज में समाजीकरण की पद्धति अत्यन्त सरल स्थिल और अविकसित थी। व्यक्ति भौतिकवाद के स्थान पर प्रकृतिवाद के रहस्यों और पारलौकिक शक्तियों के भ्रम को अज्ञानतावस स्वीकारता था जिसके कारण उसे भौतिक वस्तुओं के परिवर्तन और प्राकृतिक नियमों के परिवर्तन से उत्पन्न नवीन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों को समझने में असहजता उत्पन्न हुई। प्रकृतिवाद और टोटमवाद के संकल्पना में मनुष्य के स्वास्थ्य के सन्दर्भ में किसी प्रकार के चेतनात्मक परिवर्तन के प्रति कर्मकाण्डीय भय को सामाजिक बहिष्करण के डर से अवरोध का एक साधन बना दिया था फलस्वरूप जिस प्रकार की बीमारियों और उनके कारणों को मनुष्य जानता था वह उसके भी समाधान के लिए सामाजिक बहिष्करण और सांस्कृतिक आध्यात्मिक भय के कारण प्रयास नहीं करता था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण समाज में विविध प्रकार के परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का मूल कारण चेतना एवं विकास को माना गया है। यह विकास स्वास्थ्य और उसके दशाओं से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सम्बद्ध रहा है। यद्यपि स्वास्थ्य की चेतना के सन्दर्भ में विकास गति अत्यन्त निम्न थी। भारत औषधियों के सन्दर्भ में आदि काल से ही सम्पन्न रहा है जबकि शिक्षा के सन्दर्भ में इसके विकास और पद्धति को विश्व के अन्य देशों ने न केवल सराहा बल्कि उसे स्वीकार भी किया। ऐसी स्थिति पर भी भारत में स्वास्थ्य संस्कृति के विकास की गति अत्यन्त धीमी होना इस बात को दर्शाता है कि स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक जागरूकता नहीं थी। इस बात की पुष्टि स्वास्थ्य विज्ञापन से सम्बन्धित विद्वान भाटिया (1977)[1], बैनर्जी (1974)[2], भण्डारी (1970)[3], चौटनी एवं अन्य (1973)[4], चोपड़ा (1956)[5], चक्रवर्ती (1972)[6], चटोपाध्याय (1975)[7], आदि ने अपने अध्ययन में की है।

संचार के विकास ने व्यक्तियों के मध्य ज्ञान की शृंखला का प्रचार और प्रसार इस प्रकार किया कि यह प्रचार और प्रसार न केवल व्यक्ति के उस ज्ञान को बढ़ाता है जिससे व्यक्ति अपने भौतिक आवश्यकताओं की

* विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, जी. एस. एस. पी. जी. कालेज, कोयलसा, आजमगढ

पूर्ति कर सकता है बल्कि संचार के विकास से स्वास्थ्य से सम्बन्धित सुविधाओं का इस प्रकार से विकास हुआ कि स्वास्थ्य से सम्बन्धित जो भी योजनाएँ बन रही है उनका लाभ आम जनमानस को बिना किसी भेद-भाव के आसानी से उठाया जा रहा है। सरकार इसे महत्त्वपूर्ण मानते हुए तीव्रता से इसको प्रसारित भी कर रही है। स्वास्थ्य के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि भारत में रूढ़िवादी दबावों के कारण पारम्परिक और अमान्य प्रतिमान शिथिल होकर या तो सामाजिक प्रचलन से बाहर है अथवा सामाजिक रूप से समाप्त हो चुके हैं। स्वास्थ्य से सम्बन्धित बनाई गयी नीतियों में परम्परावादी सोच के स्थान पर नवीन सोच के प्रतिमानों ने व्यक्तियों के विश्वास, विचार, मूल्य, प्रथाओं आदि का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहा है। यह सांस्कृतिक तथ्य परोक्ष रूप से बीमारियों से बचाव, बीमारियों के निदान और स्वास्थ्य के प्रगतिवादी विचारधारा को दर्शाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में प्रगतिवादी विचारधारा और नव उन्मेषित **स्थानीय लोकसंस्कृति** का भी घटक के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रस्तुत अध्याय में ग्रामीण स्वास्थ्य संस्कृति के परिवर्तित प्रतिमानों के स्वरूप का अध्ययन किया गया है।

बीमारी की प्रकृति : बीमारी के प्रकृति में स्वास्थ्य संस्कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान उसके स्तर के सन्दर्भ में देखा जाता है। बीमारी और इसके पूरक विचार और अवधारणा लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य की कुछ विशिष्ट मान्यताएँ होती हैं। किसी एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ में स्वस्थ्य व्यक्ति अन्य सामाजिक सन्दर्भ में बीमार माना जा सकता है। यहाँ स्वास्थ्य के विषय में जो सामान्य मान्यताएँ हैं उसे अस्वीकार नहीं किया जा रहा है किन्तु यह अवधारणात्मकता की जटिलता को रेखांकित कर रही है। स्वास्थ्य और रोग के सन्दर्भ में स्वीकृत अवधारणाएँ व्यक्ति, समाज और सरकार द्वारा अपनाये जाने वाले दृष्टिकोण और नीतियों को प्रभावित करता है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि आधुनिक समय में बीमारियों की प्रकृति के परिवर्तन उत्तर समाधान के साथ हो। इसकी परिभाषाओं में भी विभिन्न श्रेणियाँ सम्मिलित हो गई हैं। जैसे- सामान्य बीमारी, जटिल बीमारी, मानसिक बीमारी आदि। विभिन्न पद्धतियाँ बीमारी के स्तर का समाधान करने के लिए इसके अलग-अलग स्वरूपों को अपने सिद्धान्त द्वारा अपनाए गये सूत्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। सामान्य रूप में तथा एक विशिष्ट अर्थ में स्वास्थ्य को **''अंगों के शान्त होने''** और बीमारी के **'उनके विद्रोह'** के रूप में समझा जा सकता है। बीमारी केवल व्यक्ति द्वारा भोगे जाने वाली पीड़ा ही नहीं है बल्कि इसमें यह भी माना जाता है कि पीड़ित के साथ साहयोग की स्थिति किस प्रकार की है?

ग्रामीण परिवेश में स्वास्थ्य को जीवन संचय की सबसे अमूल्य पूँजी के रूप में माना जाता है। अज्ञानता, अशिक्षा और सम्बन्धों के भ्रम में फँसकर व्यक्ति छोटी से छोटी बीमारी को गम्भीर और जटिल बीमारी के रूप में परिवर्तित कर देता है। यह परिवर्तन उनको चौतरफा संकट के द्वार पर खड़ा कर देता है जिसके समाधान में न केवल जटिलताएँ ही आती हैं बल्कि कभी-कभी व्यक्ति सामाजिक और मानसिक रूप से टूटने के साथ ही साथ रोगी की जीवन वृत्ति भी समाप्त हो जाती है।

नैदानिक पद्धति : स्वास्थ्य के सन्दर्भ में पद्धतियों की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। यह पद्धतियाँ न केवल नैदानिक विकल्प उपलब्ध कराती है वरन् इसके माध्यम से स्वास्थ्य से सम्बन्धित आधारभूत संरचना का मूल्यांकन करके व्यक्ति रोग और निदान के सही विकल्प को प्राप्त करते हुए जल्दी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर लेता है। व्यक्ति बीमारी के अनुरूप विविध प्रकार के पद्धतियों का उपयोग सामाजिक अनुभव के आधार पर ही चयनित करता है और इसे सहज और श्रेष्ठ विकल्प मानते हुए वह अपने तथा परिवार के रुग्ण सदस्य के स्वास्थ्य के सन्दर्भ में लाभ प्राप्ति के लिए प्रेरित होता है। भारत में यद्यपि अनेक पद्धतियों का स्वास्थ्य के क्षेत्र में विस्तार हुआ है और अनेक पद्धतियों के माध्यम से चिकित्सा की जा रही है। विभिन्न पद्धतियों के समन्वय को **'क्रास पैथी'** के नाम से स्वीकार किया जाने लगा है।

नैदानिक पद्धति के रूप में अगर हम देखें तो ग्रामीण क्षेत्र में जहाँ पहले जड़ी-बुटियों का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है वहीं वर्तमान में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के औषधियों का प्रयोग अत्यधिक बढ़ गया है। जड़ी-बुटियों के सन्दर्भ में ग्रामीण जन यह मानते हैं कि यह रोग को जड़ से समाप्त कर देता है लेकिन इसमें धैर्य की आवश्यकता होती है। पूर्व में ग्रामीण जीवन सरल और व्यावहारिक था इसलिए वह उन औषधियों का प्रयोग करते थे किन्तु आधुनिक समय में ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों में भी धैर्य की क्षमता की कमी पायी जाती है साथ ही

जन-जीवन और जीवन शैली तीव्र हो गयी है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति आधुनिक चिकित्सा के प्रति अत्यधिक निश्चिंत दिखाई पड़ता है। व्यक्ति जब व्याधि की जटिलता को नहीं समझ पाता है तो वह विश्वास चिकित्सा के प्रति आकर्षित होता है। अनेक दशाओं में यह पाया गया है कि व्यक्ति यह मान लेता है कि सम्बन्धित बीमारी का कोई विकल्प न हो तो वह विश्वास चिकित्सा की ओर आकर्षित होता है। उसका आकर्षण, समर्पण विशेष रूप से अशिक्षा तथा अन्धविश्वास के रूप में दिखाई देता है।

चिकित्सा की प्रभावी पद्धति : समसामयिक परिवेश में स्वास्थ्य मनुष्य की सबसे शक्तिशाली पूंजी है। व्यक्ति सक्रिय और क्रियाशील रहने के लिए सदैव तत्पर रहता है जिसके लिए वह समय-समय पर स्वास्थ्य परीक्षण पौष्टिक आहार एवं व्यायाम आदि के कार्य को करता रहता है किन्तु चिकित्सा के विभिन्न पद्धतियों का यह भी दृष्टिकोण सार्वभौमिक सत्य है कि शरीर रोगों का घर है। इस दशा में व्यक्ति जब किसी भी असंतुलन के कारण जब बीमार पड़ता है तो विभिन्न प्रकार के चिकित्सा पद्धतियों की ओर आकर्षित होता है। अपितु वह सुगम्य और जल्द से जल्द स्वस्थ होना चाहता है। चिकित्सा पद्धतियों के चयन का आधार मुख्य रूप से सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश पर निर्भर करता है क्योंकि रुग्णता की अवस्था में व्यक्ति परिवार, समुदाय और अपने समाज पर निर्भर हो जाता है। ऐसी दशा में अन्य लोगों द्वारा सुझाये गये विकल्पों को अपने लिए हितकर मानकर वह स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त करता है। समसामयिक ग्रामीण परिवेशों में जो पद्धतियाँ अधिक लोकप्रिय हैं परिवार तथा समाज के लोग इसका सुझाव उस व्यक्ति को देते हैं। यह सुझाव वास्तव में चिकित्सा की कार्य पद्धति की लोकप्रियता का संज्ञान होता है। कुछ अवस्थाओं जैसे- मानसिक बीमारी आदि के सन्दर्भ में यह देखा गया है कि चिकित्सकों की अपेक्षा वैद्य गुरुओं, ओझाओं तथा तान्त्रिकों तक का सुझाव समाज से प्राप्त होने लगता है, किन्तु इनकी लोकप्रियता का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं होता है। व्यक्ति इनके पास अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण ही जाता है जबकि प्रभावी नैदानिक प्रक्रिया के रूप में आधुनिक चिकित्सा पद्धति महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। देशज तथा विश्वास चिकित्सा प्रणाली का विकास संघर्ष और जटिलताओं से भरा है। यही कारण है कि इन पद्धतियों के क्षेत्र अत्यन्त सीमित हैं।

उपयोगी नैदानिक पद्धति का प्रभाव : व्यक्ति स्वास्थ्य के सन्दर्भ में जिन पद्धतियों को अपनाता है उनसे अपेक्षित त्वरित परिणाम प्राप्त करने की अपेक्षा रखता है। व्यक्ति की गम्भीरता के आधार पर अपनायी गयी चिकित्सा पद्धति विभिन्न प्रकार के प्रभावोत्पादकता को दर्शाता है जिससे कि व्यक्ति स्वास्थ्य समस्या से निकल सके। अपेक्षित रूप से चिकित्सा पद्धति के प्रभावों का मूल्यांकन स्वास्थ्य समस्याओं के सुधार के सन्दर्भ में अभिव्यक्त करता है। अनेक दशाओं में जब व्यक्ति को उस रोग से पूर्ण रूप से छुटकारा मिल जाता है तो वह व्यक्ति उस पद्धति को श्रेष्ठकर मानता है। किसी भी चिकित्सा पद्धति को वह आर्थिक आधार पर भी देखता है। वह यह चाहता है कि जो विकल्प उसके द्वारा चयनित किया गया है वह कम खर्चिला तथा विश्वास से परिपूर्ण हो जबकि लाभ के सन्दर्भ में वह मानता है कि उसे पूर्ण और त्वरित लाभ हो।

चिकित्सा को पद्धतियों का प्रभाव भी अलग-अलग रूपों में देखने को मिलता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति (ऐलोपैथ) अपने तीव्र लाभ हेतु जानी जाती है साथ ही इसकी विश्वसनीयता भी अन्य पद्धतियों की तुलना में अधिक मानी जाती है जबकि देशज चिकित्सा प्रणाली का प्रभाव भी प्रत्यक्ष रूप से रोगी की रुग्ण अवस्था पर देखा जा सकता है। प्राकृतिक पद्धति होने के कारण इसकी प्रक्रिया थोड़ी सरल और धीमी होती है किन्तु अनेक दशाओं में इसे कारगर माना गया है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में यह पद्धति कम खर्चीली होती है। कुछ दशाओं में इनकी उपलब्धता आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में जटिल होती है। विश्वास चिकित्सा के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि यह आर्थिक रूप से कम खर्चीला होता है किन्तु इसकी प्रक्रिया पूर्ण रूप से विश्वास पर ही आधारित है।

विश्वास और लोक चिकित्सा के प्रति दृष्टिकोण : विश्वास को किसी भी चिकित्सा की आत्मा के रूप में माना जाता है। रोगी और चिकित्सक का विश्वास सशक्त स्थिति रोग के निदान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि किसी भी पद्धति में चिकित्सक सबसे पहले रोगी के मन में अपने द्वारा किये जाने वाले उपचार के प्रति विश्वास को उत्पन्न करता है क्योंकि चिकित्सक यह मानता है कि उसके प्रति उत्पन्न विश्वास की यह प्रक्रिया रोग के निदान हेतु सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। लोक चिकित्सा तथा विश्वास चिकित्सा के सन्दर्भ में यह माना

जाता है कि इसके चिकित्सक के व्यवहार एवं विश्वास के साथ ही साथ सामुदायिक विश्वास की पद्धति नैदानिक प्रक्रिया को अपनाने के लिये व्यक्ति को अधिक प्रेरित करता है। व्यक्ति समुदाय तथा परिवार के लोगों के सुझावों को विश्वास के रूप में परिणित करता है। उनसे अपनी चिकित्सा कराता है। अध्ययन में स्वतन्त्र वार्तालाप में यह पाया गया है कि कुछ उत्तरदाता यह मानते हैं कि कुछ चुनी हुई बीमारियाँ है जिनका इलाज केवल और केवल विश्वास चिकित्सा प्रणाली के पास ही होता है। इसका उदाहरण देते हुए यह बताया गया है कि पेट से साम्बन्धित बीमारियों में अन्य चिकित्सा विधि की तुलना में लोक चिकित्सा विधि द्वारा अधिक कारगर है जबकि मानसिक चिकित्सा के सन्दर्भ में उनका मत था कि विश्वास चिकित्सा पद्धति सबसे प्रभावी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. एस.एल. भाटिया (1977) : ए हिस्ट्री ऑफ मेडिसिन पब्लिस्ड बाई द मैनेजमेण्ट कमेटी, डॉ0 बी.जी. रॉय, नेशनल अवार्ड फण्ड, नई दिल्ली.
2. डी. बैनर्जी (1974) : हेल्थ विहेवियर ऑफ यरल पापुलेशन इम्पैक्ट ऑफ रूरल हेल्थ सर्विसेज जवाहर लाल नेहरू, युनिवर्सिटी सेण्टर, सोशल मेडिसिन एण्ड कम्युनिटी हेल्थ, नई दिल्ली.
3. सी. भण्डारी (1970) : ऐन एक्स इनसाईक्लोपीडिया इन इण्डियन बाटनी एण्ड हर्ब्स, वाल्यूम 1-10, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिसर, वाराणसी.
4. सी. एस. चौटनी एवम् जे.सी. भाटिया तथा अन्य (1973) : ए सर्वे ऑफ इण्डो जिनियस मेडिसिन प्रैक्टिसनर इन रूरल एरिया ऑफ फाइब डिफरेन्ट स्टेट्स इन इण्डिया, इण्डियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिव्यू, प्रीसोशियोमेडिसिन.
5. आर.एन. चोपड़ा एवम् अन्य (1956) : ग्लोसरी ऑफ इण्डियन मेडिकल प्लान्ट्स कौन्सिल ऑफ साईन्टफिक एण्ड इण्डिस्ट्रीयल रिसर्च, नई दिल्ली.
6. एन.के. चक्रवर्ती (1972) : स्टडी ऑफ द वर्किंग ऑफ चिरईगाँव ब्लॉक एम.डी. थीसीस डिपार्टमेन्ट ऑफ पी.एस.आई.एम.एस., बी.एच.यू. वाराणसी.
7. एस. चट्टोपाध्याय (1975) : जिन्सेज ऑफ सोसलसाईन्स इन माडर्न मेडिसीन अक्रोमोलॉजीकल सोशल साईन्स इन प्रोफेसनल, आई.सी.एस. एस.आर., नई दिल्ली.

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एवं प्राथमिक शिक्षा के संसाधन

अल्पना वर्मा*

डॉ. चंद्रजीत यादव**

प्रस्तावनाः

हम अपने सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों के द्वारा कुछ ना कुछ शिक्षा लगातार ग्रहण करते रहते हैं, परन्तु विद्यालयों में इस शिक्षा को सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध एवं सुनियोजित तरीके से दी जाने की कोशिश की जाती है। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है यह है कि बच्चे जीवन जीने में सामर्थ्य को प्राप्त कर सके और चुनौतियों का दृढ़तापूर्वक समाना कर सके। एक तरह से हमारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से घट रही विभिन्न प्रकार की स्थितियों एवं परिस्तिथियों को जानने एवं समझने की क्षमता तथा उन परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना पाने या स्वयं को ढालकर उन परिस्थितियों के अनुकूल बना लेना, शिक्षा का सबसे बड़ा लक्ष्य माना जा सकता है। सम सामयिक परिस्थितियों का समाना करके विकसित बच्चे ही स्वयं, परिवार एवं समाज के सकारात्मक विकास में भागीदार हो सकते हैं। जबकि विद्यालयीय शिक्षा में बच्चों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास करना ही मुख्य लक्ष्य है।

विद्यालय ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ पर उपयुक्त एवं अपेक्षित वातावरण देकर छात्रों के व्यवहार में अपेछित एवं वांछित परिवर्तन लाया जाता है और ऐसा करके ही विद्यालय सामाजिक निर्माण, उन्नति एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण कारक बन सकते हैं। विद्यालय ही वह स्थान है जहाँ पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास तथा जीवन लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है। इसलिए विद्यालय केवल शिक्षा देने का साधन ही नहीं अपितु व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र है। इस प्रकार विद्यालय एवं विभिन्न प्रकार के शैक्षिक संस्थान न सिर्फ शिक्षा देते हैं बल्कि बालक के भविष्य की समस्त क्रियाकलापों एवं गतिविधियों का भी निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

देश की प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार करने की परम आवश्यकता है। प्राथमिक शिक्षा को किसी भी प्रकार के विदेशी निवेश से मुक्त रखते हुये उसे देश एवं समाज की आवश्यकता के अनुरूप विकसित किया जाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक समस्याए देखने को मिलती हैं, जैसे–शिक्षकों की अनुपस्थिति, शिक्षा के प्रति अभिभावकों का उदासीन व्यवहार, अवसर की असमानता, उचित पाठ्यक्रम का अभाव, उचित शिक्षण विधियों का अभाव, न्यूनतम भौतिक संसाधनों का अभाव इत्यादि। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के द्वारा इन समस्याओं के समाधान हेतु विशेष प्रयास किया गया। इस शोध पत्र के अंतर्गत विशेष रूप से सीतापुर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों के भौतिक संसाधनों की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया।

उद्देश्यः

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य "उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में प्राथमिक विद्यालयों के भौतिक संसाधनों की स्थिति का अध्ययन करना" था।

उपकरणः

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के संदर्भ में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक संसाधनो की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करने हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित जाँच सूची का प्रयोग किया गया।

शोध विधिः

प्रस्तुत अध्ययन हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

* शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

** प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

सीमांकन:

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद तक सीमित था।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में "उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज" द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों को ही सम्मिलित किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण:

भौतिक संसाधनों से सम्बंधित प्रयुक्त जाँच सूची से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण आवृत्ति एवं प्रतिशत के माध्यम से किया गया है। उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक संसाधनो से सम्बन्धित संकलित ऑकड़ों का विवरण तालिका – 4.1 में प्रस्तुत है।

तालिका–4.1 : उत्तर प्रदेश राज्य के सीतापुर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक संसाधन

क्र. सं.	भौतिक संसाधन			सीतापुर जनपद के विकास खण्ड – वार प्राथमिक विद्यालय									
				बेहटा		लहरपुर		बिसवां		रामपुर मथुरा		योग	
				हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं
1	प्रधानाध्यापक कक्ष		f	8	2	7	3	6	4	9	1	30	10
			%	80	20	70	30	60	40	90	1	75	25
2	कार्यालय कक्ष		f	2	8	3	7	4	6	2	8	11	29
			%	20	80	30	70	40	60	20	80	27.5	72.5
3	कक्षा–कक्ष की संख्या	दो कक्षा–कक्ष	f	3		3		2		2		10	
			%	30		30		20		20		25	
		तीन कक्षा–कक्ष	f	5		4		5		4		18	
			%	50		40		50		40		45	
		चार कक्षा–कक्ष	f	1		2		2		2		7	
			%	10		20		20		20		17.5	
		पांच कक्षा–कक्ष	f	1		1		1		2		5	
			%	10		10		10		20		12.5	
4	पुस्तकालय कक्ष		f	2	8	3	7	4	6	2	8	11	29
				20	80	30	70	40	60	20	80	27.5	72.5
5	रसोई घर		f	9	1	8	2	7	3	9	1	33	7
			%	90	10	80	20	70	30	90	10	82.5	17.5
6	बाउंड्री वाल		f	8	2	9	1	9	1	8	2	34	6
			%	80	20	90	10	90	10	80	20	85	15
7	छात्र एवं छात्राओं के लिए पृथक–पृथक शौचालय की सुविधा		f	9	1	7	3	8	2	9	1	33	7
			%	90	10	70	30	80	20	90	10	82.5	17.5
8	फर्नीचर–अध्यापकों हेतु		f	9	1	10	0	10	0	10	0	39	1
			%	90	10	100	0	100	0	100	0	97.5	2.5
9	फर्नीचर–छात्रों हेतु		f	3	7	3	7	2	8	2	8	10	30
			%	30	70	30	70	20	80	20	80	25	75
10	विद्युत सुविधा–लाइट		f	8	2	7	3	9	1	8	2	32	8
			%	80	20	70	30	90	10	80	20	80	20
11	पंखे		f	7	3	9	1	8	2	6	4	30	10
			%	70	30	90	10	80	20	60	40	75	25
12	टाट–पट्टी		f	6	4	8	2	7	3	9	1	30	10
			%	60	40	80	20	70	30	90	10	75	25

13	दृश्य–शिक्षण सहायक सामग्री (चार्ट, माडल, ग्लोब, मानचित्र इत्यादि)	f	10	0	10	0	10	0	10	0	40	0
		%	100	0	100	0	100	0	100	0	100	0
14	श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री (रेडियो, टेप, रिकार्डर इत्यादि)	f	8	2	7	3	9	1	6	4	30	10
		%	80	20	70	30	90	10	60	40	75	25
15	दृश्य–श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री (प्रोजेक्ट, कंप्यूटर, टेलीविजन इत्यादि)	f	1	9	0	10	2	8	1	9	4	36
		%	10	90	0	100	20	80	10	90	10	90
16	खेल का मैदान	f	9	1	7	3	9	1	8	2	33	7
		%	90	10	70	30	90	10	80	20	82.5	17.5
17	खेल सामग्री	f	10	0	9	1	10	0	8	2	37	3
		%	100	0	90	10	100	0	80	20	92.5	7.5
18	प्राथमिक चिकित्सा पेटी	f	9	1	10	0	8	2	10	0	37	3
		%	90	10	100	0	80	20	100	0	92.5	7.5
19	प्राथमिक उपचार हेतु उपकरण व दवाएं	f	6	4	8	2	9	1	7	3	30	10
		%	60	40	80	20	90	10	70	30	75	25

उपरोक्त तालिका: –4.1 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में शिक्षा का अधिकार अधिनियम –2009 के संदर्भ में सीतापुर जनपद के 75 प्रतिशत से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में प्रधानाध्यापक कक्ष की व्यवस्था थी। जबकि उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा विकास खण्ड क्षेत्र में क्रमशः 80 प्रतिशत, 70 प्रतिशत, 60 प्रतिशत व 90 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में प्रधानाध्यापक कक्ष पाये गये। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 22.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में कार्यालय कक्ष थे जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा व रामपुर मथुरा में 20–20 प्रतिशत एवं लहरपुर व बिसवां में क्रमशः 30 प्रतिशत व 40 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में कार्यालय कक्ष बने हुए थे। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 25 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में दो कक्षा – कक्ष, 45 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में तीन कक्षा – कक्ष, तथा 17.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में चार कक्षा – कक्ष निर्मित थे। केवल 12.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पांच कक्षा – कक्ष पाये गये। जबकि उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के बिसवां व रामपुर मथुरा विकास खण्ड क्षेत्र में 20 प्रतिशत एवं लहरपुर व बेहटा विकास खण्ड क्षेत्र में 30 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में दो कक्षा – कक्ष पाये गये। वहीं लहरपुर व रामपुर मथुरा विकास खण्ड क्षेत्र के 40 प्रतिशत एवं बेहटा व बिसवां विकास खण्ड क्षेत्र के क्रमशः 50 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में तीन कक्षा – कक्ष उपलब्ध थे। लहरपुर, बिसवां, व रामपुर मथुरा विकास खण्ड क्षेत्र के 20 प्रतिशत एवं बेहटा विकास खण्ड क्षेत्र के 10 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालय ऐसे थे जहां पर चार कक्षा – कक्ष निर्मित थे। वहीं उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के बेहटा, लहरपुर, रामपुर मथुरा व बिसवां विकास खण्ड क्षेत्र के 10 –10 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पांच कक्षा – कक्ष की उपलब्धता थी। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 27.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पुस्तकालय कक्ष की व्यवस्था थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा व रामपुर मथुरा में 20– 20 प्रतिशत एवं लहरपुर व बिसवां में क्रमशः 30 प्रतिशत व 40 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पुस्तकालय कक्ष पाये गये हैं। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 82.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में मध्याह्न भोजन बनाने हेतु रसोई घर बने हुए थे जबकि उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के बेहटा व रामपुर मथुरा में 90– 90 प्रतिशत एवं बेहटा व लहरपुर विकास खण्ड क्षेत्र में क्रमशः 80 प्रतिशत व 70 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में रसोई घर बने थे। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 85 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों के चारों ओर बाउंड्री वाल बनी हुई थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र लहरपुर व बिसवां के 90–90 प्रतिशत एवं बेहटा व रामपुर मथुरा के 80–80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों के चारों ओर बाउंड्री वाल बनी हुई थी। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 82.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में छात्र एवं छात्राओं के लिए पृथक् – पृथक् शौचालय की सुविधा उपलब्ध थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा

व रामपुर मथुरा में 90–90 प्रतिशत एवं लहरपुर व बिसवां में क्रमशः 70 प्रतिशत व 80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में छात्र एवं छात्राओं के लिए पृथक् – पृथक् शौचालय की सुविधा उपलब्ध थी। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 97.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों हेतु फर्नीचर उपलब्ध था जबकि विकास खण्ड क्षेत्र लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में 100 – 100 प्रतिशत एवं बेहटा विकास खण्ड क्षेत्र में 90 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों हेतु फर्नीचर उपलब्ध था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर के जनपद 25 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों हेतु फर्नीचर उपलब्ध था जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में क्रमशः 30 प्रतिशत, 30 प्रतिशत, 80 प्रतिशत व 80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों हेतु फर्नीचर उपलब्ध था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में विद्युत् सुविधा उपलब्ध थी जबकि सीतापुर जनपद के विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा व रामपुर मथुरा में 80 – 80 प्रतिशत एवं लहरपुर व बिसवां विकास खण्ड क्षेत्र में क्रमशः 70 प्रतिशत व 90 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में विद्युत् सुविधा उपलब्ध थी। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 75 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पंखे लगे हुए थे जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में क्रमशः 70 प्रतिशत, 90 प्रतिशत, 80 प्रतिशत व 60 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पंखे लगे हुए थे। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 75 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के बैठने के लिए टाट – पटटी उपलब्ध थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में क्रमशः 60 प्रतिशत, 80 प्रतिशत, 70 प्रतिशत व 90 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के बैठने के लिए टाट – पटटी उपलब्ध था। शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा विकास खण्ड क्षेत्र के 100 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में दृश्य शिक्षण सहायक सामग्री (चार्ट, मॉडल, ग्लोब, मानचित्र इत्यादि) आदि उपलब्ध थे। इसी क्रम में उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 75 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री (रेडियो, टेप–रिकॉर्डर इत्यादि) भी उपलब्ध था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के विकास खण्ड क्षेत्र के बेहटा, लहरपुर, बिसवां, व रामपुर मथुरा में क्रमशः 80 प्रतिशत, 70 प्रतिशत, 90 प्रतिशत व 60 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री (रेडियो, टेप–रिकॉर्डर इत्यादि) भी उपलब्ध थी। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के केवल 10 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में दृश्य – श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री (प्रोजेक्टर, कंप्यूटर, टेलीविजन इत्यादि) की उपलब्धता थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा व रामपुर मथुरा में 10–10 प्रतिशत एवं बिसवां के 20 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में दृश्य – श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री (प्रोजेक्टर, कंप्यूटर, टेलीविजन इत्यादि) की उपलब्ध थी।जबकि लहरपुर के किसी भी प्राथमिक विद्यालय में दृश्य–श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री नहीं उपलब्ध थी। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 82.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में खेल का मैदान था, जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा व बिसवां 90– 90 प्रतिशत एवं लहरपुर व रामपुर मथुरा के क्रमशः 70 प्रतिशत व 80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में खेल का मैदान था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 92.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में खेल सामग्री थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा व बिसवां में 100 प्रतिशत एवं लहरपुर व रामपुर मथुरा के क्रमशः 90 प्रतिशत व 80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में खेल सामग्री उपलब्ध था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 92.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में प्राथमिक चिकित्सा पेटी उपलब्ध थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र लहरपुर व रामपुर मथुरा के 100 प्रतिशत एवं बेहटा व बिसवां के क्रमशः 90 प्रतिशत व 80 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में प्राथमिक चिकित्सा पेटी उपलब्ध था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के 75 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में प्राथमिक उपचार हेतु उपकरण और दवाएं उपलब्ध थी जबकि विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा के क्रमशः 60 प्रतिशत, 80 प्रतिशत, 90 प्रतिशत व 70 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में प्राथमिक उपचार हेतु उपकरण और दवाएं उपलब्ध थी।

निष्कर्षः

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश राज्य में सीतापुर जनपद के अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में भौतिक संसाधनों के अंतर्गत प्रधानाध्यापक कक्ष, रसोई – घर, बाउंड्रीवाल, छात्र – छात्राओं हेतु अलग – अलग शौचालय, अध्यापकों हेतु फर्नीचर, विद्युत् एवं कक्षाओं में पंखे, दृश्य – शिक्षण सामग्री, खेल के मैदान, खेल सामग्री, उपचार उपकरण, दवाई एवं चिकित्सा

पेटी आदि की स्थिति उत्तम व संतोषजनक पायी गयी। जबकि, अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में कार्यालय–कक्ष, पुस्तकालय – कक्ष एवं दृश्य – श्रव्य शिक्षण सहायक सामग्री का अभाव पाया गया।

इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में तीन या इससे अधिक शिक्षण–कक्ष तथा इनमें बैठने हेतु फर्नीचर के स्थान पर टाट–पट्टी पायी गयी। कमोवेश इसी प्रकार की स्थिति उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के तीनों विकास खण्ड क्षेत्रों यथा बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा के सम्बन्ध में भी पायी गयी।

अतएव निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के सन्दर्भ में सीतापुर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में अधिकांश भौतिक संसाधनों की स्थिति संतोषजनक पायी गयी।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. भारत सरकार. (1950). भारत का संविधान. नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय।
2. भारत सरकार. (2009). बच्चों का निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009. नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय।
3. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020. नई दिल्ली: भारत सरकार।
4. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2023). स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता: वार्षिक प्रतिवेदन. नई दिल्ली: एनसीईआरटी।
5. उत्तर प्रदेश सरकार. (2023). बेसिक शिक्षा विभाग: वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन. लखनऊ: बेसिक शिक्षा विभाग।
6. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Census of India 2011. New Delhi: Government of India.
7. शर्मा, आर. ए. (2019). शैक्षिक अनुसंधान. मेरठ: आर. लाल बुक डिपो।

जलवायु परिवर्तन का ग्रामीण समाज और आजीविका पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अर्चना मिश्रा*

सारांश (Abstract)

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन विश्व के समक्ष एक गंभीर सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौती के रूप में उभरा है। इसका प्रभाव केवल प्राकृतिक संसाधनों तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण समाज, कृषि रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और आजीविका के विभिन्न आयामों पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारत जैसे कृषि–प्रधान देश में ग्रामीण समुदाय अपनी आजीविका के लिए मुख्यतः प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं। अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, सूखा, बाढ़ तथा अन्य चरम मौसमी घटनाएँ ग्रामीण परिवारों की आय, खाद्य सुरक्षा और सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं।

यह शोध–पत्र द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है। इसमें प्रकाशित शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के दस्तावेजों तथा पुस्तकों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के कारण ग्रामीण समाज की आजीविका, सामाजिक संरचना, पलायन, लैंगिक भूमिकाओं तथा सामुदायिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों का विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, आजीविका सुरक्षा और सतत विकास से जुड़ा एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न है। अतः प्रभावी नीतियों, स्थानीय सहभागिता और सतत विकास आधारित रणनीतियों के माध्यम से ग्रामीण समुदायों की अनुकूलन क्षमता को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

कुंजी शब्द (Key Words): जलवायु परिवर्तन, ग्रामीण समाज, आजीविका, सामाजिक परिवर्तन, कृषि, पलायन, सतत विकास।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन 21वीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण वैश्विक चुनौतियों में से एक है। बढ़ते वैश्विक तापमान, वर्षा के बदलते स्वरूप, सूखा, बाढ़, चक्रवात तथा अन्य चरम मौसमी घटनाओं ने मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। भारत जैसे विकासशील और कृषि–प्रधान देश में इसका प्रभाव विशेष रूप से ग्रामीण समाज पर अधिक पड़ता है, क्योंकि अधिकांश ग्रामीण परिवार कृषि, पशुपालन तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर हैं।

ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंध, सामुदायिक सहयोग, श्रम विभाजन तथा आर्थिक गतिविधियाँ प्रकृति के साथ गहराई से जुड़ी होती है। जब जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन घटता है या प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है, तब इसका प्रभाव केवल आय तक सीमित नहीं रहता, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, रोजगार, पलायन तथा सामाजिक संबंधों पर भी पड़ता है। इससे ग्रामीण परिवारों की जीवन–शैली, सामाजिक भूमिकाओं और विकास की संभावनाओं में परिवर्तन देखने को मिलता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरणीय संकट नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता, संसाधनों के वितरण, सामाजिक न्याय और विकास से जुड़ा प्रश्न भी है। सीमांत किसान, भूमिहीन मजदूर, महिलाएँ और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग इसके प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। इसलिए जलवायु परिवर्तन का अध्ययन सामाजिक संदर्भों में करना अत्यंत आवश्यक हैं।

यह शोध–पत्र ग्रामीण समाज पर जलवायु परिवर्तन के बहुआयामी प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि बदलती जलवायु ग्रामीण आजीविका, सामाजिक संरचना और सामुदायिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित कर रही है।

* सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, श्री राम पी.जी. कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड एजुकेशन, वाराणसी

अध्ययन के उद्देश्य

1. जलवायु परिवर्तन की अवधारणा एवं उसके प्रमुख कारणों का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण समाज की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. जलवायु परिवर्तन के कारण ग्रामीण आजीविका में आए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
4. जलवायु परिवर्तन और ग्रामीण पलायन के मध्य संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।
5. ग्रामीण समुदायों के लिए अनुकूलन (Adaptation) एवं सतत विकास संबंधी सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध–पद्धति

यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों (Secondary Data) पर आधारित है। शोध के लिए पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, जनगणना, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशनों तथा अन्य विश्वसनीय स्त्रोतों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषण (Analytical) शोध–पद्धति का उपयोग किया गया है। उपलब्ध साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्किोण से विश्लेषण कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

साहित्य समीक्षा

जलवायु परिवर्तन और ग्रामीण समाज पर अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों में यह पाया गया है कि जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव कृषि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर समुदायों पर पड़ता है।

Intergovernmental Panel on Climate Change की विभिन्न आकलन रिपोर्टों में यह स्पष्ट किया गया है कि तापमान वृद्धि, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा अन्य चरम मौसमी घटनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की आजीविका और खाद्य सुरक्षा को गंभीर रूप से प्रभावित कर रही हैं।

Food and Agriculture Organization के अध्ययनों के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण छोटे एवं सीमांत किसानों की आय, कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विशेष रूप से विकासशील देशों में ग्रामीण समुदाय अधिक संवेदनशील पाए गए हैं।

भारतीय संदर्भ में भी विभिन्न समाजशास्त्रीय एवं विकास संबंधी अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि जलवायु परिवर्तन ने कृषि उत्पादन, रोजगार, जल संसाधनों और ग्रामीण पलायन को प्रभावित किया है। इससे सामाजिक असमानता और आर्थिक असुरक्षा भी बढ़ी है।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

इस अध्ययन में मुख्य रूप से निम्न समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों का उपयोग किया जाएगा–

- संरचनात्मक–कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural Functionalism): यह समझने के लिए कि जलवायु परिवर्तन ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं और उनके कार्यों को किस प्रकार प्रभावित करता है।
- संघर्ष सिद्धांत (Conflict Theory): यह विश्लेषण करने के लिए कि सीमित संसाधनों, भूमि, जल और रोजगार पर बढ़ती प्रतिस्पर्धा किस प्रकार सामाजिक असमानताओं को बढ़ाती है।
- सतत विकास (Sustainable Development) का दृष्टिकोणः यह देखने के लिए कि पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जा सकता है।

यह सैद्धांतिक आधार अध्ययन को केवल पर्यावरणीय नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत संदर्भों में भी समझने में सहायता करेगा।

जलवायु परिवर्तन का ग्रामीण समाज एवं आजीविका पर प्रभावः एक समाजशास्त्री विश्लेषण

1. कृषि एवं आजीविका प्रभाव

भारत के अधिकांश ग्रामीण परिवार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन, तापमान में वृद्धि, सूखा, बाढ़ और ओलावृष्टि जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है। इससे कृषि उत्पादन में अनिश्चितता बढ़ी है और किसानों की आय प्रभावित हुई है। छोटे एवं सीमांत किसान सबसे अधिक प्रभावित होते हैं क्योंकि उनके पास जोखिम का सामना करने के लिए सीमित संसाधन उपलब्ध होते हैं।

कृषि उत्पादन में कमी का प्रभाव केवल किसानों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि कृषि मजदूरों, स्थानीय बाजारों तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। परिणामस्वरूप बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता और आर्थिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ बढ़ती हैं।

2. ग्रामीण पलायन में वृद्धि

जब कृषि से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होती, तब ग्रामीण युवा रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करते हैं। यह पलायन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी कारण बनता है। गाँवों में कार्यशील आयु वर्ग की संख्या घटती है, जबकि महिलाओं, बच्चों और वृद्धजनों पर कार्य का बोझ बढ़ जाता है।

पलायन के कारण पारिवाकि संरचना, सामाजिक संबंधों और सामुदायिक जीवन में भी परिवर्तन आता है। कई बार यह सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आता है। कई बार यह सामाजिक विघटन और सांस्कृतिक बदलाव का कारण भी बनता है।

3. महिलाओं पर प्रभाव

ग्रामीण महिलाओं की भूमिका जल, ईधन, पशुपालन और कृषि कार्यों से गहराई से जुड़ी होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण जल स्त्रोतों का सूखना, ईधन की उपलब्धता में कमी तथा कृषि कार्यों की कठिनाइयाँ महिलाओं के श्रम और समय दोनों को बढ़ा देती हैं।

इसके साथ ही पुरुषों के पलायन के कारण महिलाओं को परिवार की आर्थिक और सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी अधिक उठानी पड़ती हैं। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन का प्रभाव लैंगिक असमानता को और गहरा कर सकता है।

4. सामाजिक असमानता और संवेदनशील समूह

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान नहीं पड़ता। भूमिहीन मजदूर, सीमांत किसान, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा आर्थिक रूप से कमजोर परिवार अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित होते हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह स्थिति दर्शाती है कि प्राकृतिक आपदाएँ पहले से मौजूद सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को और बढ़ा सकती हैं।

5. स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती गर्मी, जलजनित रोग, कुपोषण और स्वच्छ पेयजल की कमी ग्रामीण स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। जब परिवार की आय घटती है, तब बच्चों की शिक्षा भी प्रभावित होती है। कई परिवार आर्थिक कारणों से बच्चों को विद्यालय से निकालकर श्रम में लगा देते हैं।

6. सामाजिक एकजुटता एवं सामुदायिक जीवन

ग्रामीण समाज की विशेषता सामुदायिक सहयोग और पारस्परिक सहायता है। जलवायु परिवर्तन के कारण संसाधनों की कमी होने पर कई स्थानों पर सहयोग की भावना मजबूत होती है, जबकि कुछ क्षेत्रों में जल, भूमि और अन्य संसाधनों को लेकर विवाद भी बढ़ सकते हैं।

इसलिए स्थानीय संस्थाओं, ग्राम पंचायतों और स्वयं सहायता समूहों की भूमिका जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण हो जाती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जलवायु परिवर्तन आज केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं रह गया है, बल्कि यह ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, आर्थिक गतिविधियों, सांस्कृतिक जीवन तथा आजीविका को गहराई से प्रभावित करने वाली चुनौती बन चुका है। कृषि उत्पादन में गिरावट, अनियमित वर्षा, जल संकट, प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति तथा ग्रामीण पलायन जैसी समस्याओं ने ग्रामीण जीवन की स्थिरता को प्रभावित किया है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान नहीं पड़ता। छोटे एवं सीमांत किसान, भूमिहीन मजदूर, महिलाएँ तथा आर्थिक रूप से कमजोर परिवार आधिक संवेदनशील हैं। इन वर्गों की आजीविका और सामाजिक सुरक्षा पर सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभाव दिखाई देता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जलवायु परिवर्तन सामाजिक असमानता, संसाधनों के असमान वितरण तथा विकास की चुनौतियों से भी जुड़ा हुआ है। अतः इसका समाधान केवल चुनौतियों से भी जुड़ा हुआ है। अतः इसका समाधान केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है। इसके लिए स्थानीय समुदायों की सहभागिता, सामाजिक न्याय, प्रभावी सरकारी नीतियाँ तथा सतत विकास के सिद्धांतों पर आधारित योजनाएँ आवश्यक हैं।

सुझाव

1. ग्रामीण क्षेत्रों में जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन तथा प्राकृतिक संसाधनों के सतत प्रबंधन को बढ़ावा दिया जाए।
2. किसानों को जलवायु–अनुकूलन कृषि तकनीकों तथा फसल विविधीकरण के लिए प्रशिक्षण दिया जाए।
3. ग्रामीण युवाओं के लिए कृषि के साथ–साथ वैकल्पिक रोजगार के अवसर विकासित किए जाएँ।
4. महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान की जाए।
5. जलवायु परिवर्तन के संबंध में ग्रामीण समुदायों में जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाएँ।
6. ग्राम पंचायतों एवं स्थानीय संस्थाओं को जलवायु अनुकूलन योजनाओं के क्रियान्वयन में अधिक अधिकार और संसाधन दिए जाएँ।
7. सामाजिक सुरक्षा योजनओं, फसल बीमा और आपदा राहत कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी बनाया जाए।

संदर्भ सूची

1. अहूजा, राम (2021). भारतीय समाज जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।
2. देसाई, ए. आ. (2018) भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र. नई दिल्लीः रावत पब्लिकेशन्स।
3. सिंह, योगेन्द्र. (2019) भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण. नई दिल्लीः रावत पब्लिकेशन्स।
4. दुबे, श्यामाचरण. (2017). भारतीय ग्राम. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
5. पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना।
6. नीति आयोग. (2023). सतत विकास लक्ष्यः भारत प्रगति रिपोर्ट।
7. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2023). Climate Change 2023: Synthesis Report.
8. Food and Agriculture Organization. (2021). The State of Food and Agriculture.
9. United Nations Development Programme. (2022). Human Development Report.
10. World Bank. (2022). World Development Report.